अध्ययन-माला
३

तुलसी रसायन

[गोस्वामी तुलसीदास के युग, जीवनी और कृतित्व की समीक्षा तथा कृतियों से चुना हुआ संग्रह]

डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

सागर विश्वविद्यालय

साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड

इलाहाबाद - 3

प्रकाशकीय

'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' और 'महाकवि भूषण' के बाद अध्ययन-माला का यह तृतीय पुष्प आपके सामने है। विद्वान लेखकों और गुणग्राही पाठकों के सक्रिय सहयोग से यह 'माला' इतनी लोकप्रिय एवं समादृत हुई है कि आगामी पुष्पों का चयन हम किंचित् अधिक सजग होकर करने को बाध्य हैं। प्रस्तुत योजना का मुख्य उद्देश्य हिन्दी के आधारस्तम्भ साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का खोजपूर्ण एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रकाशित कर साहित्य-पिपासुओं के लिए 'गागर में सागर' उपस्थित करना है।

भक्त-हृदय, लोग-संग्रही कवि तुलसी मर्यादापुरुषोत्तम राम के गुणगायक हैं। वह राम जो—

"विप्र धेनु सुर संत हित लीह्न मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥"

यहाँ पर विप्र, धेनु, सुर और संत का हित, कदाचित् क्रमभेद होने पर भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का ही हित-साधन है, जो मानव-जीवन तथा मानव-समाज के लिए समान रूप से सदा वांछनीय है। सुयोग्य एवं अधिकारी लेखक ने अपने विषय को स्पष्ट तथा हृदयग्राही बनाने का सफल प्रयास कर हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सफल योग दिया है। आशा है इस विषय के जिज्ञासु इसके द्वारा अपेक्षित लाभार्जन कर सकेंगे। हम ऐसी पुस्तक प्रकाशित कर संतोष अनुभव कर रहे हैं। यह संस्करण संशोधित एवं संवर्द्धित रूप में प्रकाशित हो रहा है।

—प्रकाशक

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

● ● ●

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहीं अधमाई॥

● ● ●

सरल कबित कीरत बिमल, सुनि आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करैं बखान॥

भूमिका

प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट ए० स्मिथ (Vincent A. Smith) ने अपने सुविख्यात ग्रंथ अकबर महान् (Akbar, The Great Moghul) नामक ग्रंथ में लिखा है[1] कि तुलसीदास अपने युग में भारतवर्ष के सबसे महान् व्यक्ति थे; अकबर से भी बढ़कर, इस बात में कि करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मन पर प्राप्त की हुई कवि की विजय, सम्राट की एक या समस्त विजयों की अपेक्षा असंख्यगुनी अधिक चिरस्थायी और महत्त्वपूर्ण थी। भारतीय विद्वान तथा हिन्दी-भाषी साहित्यिक और भक्त तो तुलसी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार

---

1. It is a relief to turn from the triviality and impurity of most of the versifiers in Persian to the virile, pure work of a great Hindu—the tallest tree in the magic garden of mediaeval Hindu Poesy. His name will not be found in the Aina-Akbari, or in the pages of any muslim annalist, or in the books by European authors based on the narratives of the Persian historians. Yet that Hindu was the greatest man of his age in India—greater even than Akbar himself, in as much as the conquest of the hearts and minds of millions of men and women affected by the poet was an achievement infinitely more lasting and important than any or all of the victories gained in war by the monarch.

—V. A. Smith : Akbar, the Great Moghul. 2nd Ed., P. 417

की प्रशंसात्मक धारणाएँ रखते ही[1] हैं; परन्तु, एक तटस्थ विदेशी इतिहासकार के इस प्रकार के मत को पढ़कर हम अधिक गौरव का अनुभव करते हैं और मन होता है कि इस महान् कवि का प्रामाणिक, पुष्ट, निरपेक्ष अध्ययन करके उसके कृतित्व का वास्तविक मूल्यांकन किया जा सके। डॉ० जार्ज ग्रियर्सन ने

---

१. (अ) आनन्दकानने कश्चित् तुलसी जंगमस्तरुः।
कविता मंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

—मधुसूदन सरस्वती

(आ) रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्रान।
हिन्दुवान को बेद सम जनमहिं प्रकट पुरान॥
—कल्याण के रामायणांक से उद्धृत, रहीम का दोहा।

(इ) तुलसीदास की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और उसे अद्वितीय ग्रंथ मानता हूँ........

गीता और तुलसीदास की रामायण की संगति से जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है, वैसी और किसी से नहीं।

—गान्धी, नवजीवन

....

(ई) भारतीय साहित्य के इतिहास में तुलसीदास जी के रामायण का एक स्वतंत्र स्थान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और उस भाषा का यह सर्वोत्तम ग्रंथ है, अतः राष्ट्रीय दृष्टि से इस ग्रंथ का स्थान अद्वितीय है ही, पर भारत के सात-आठ करोड़ लोग इसे वेदतुल्य प्रामाणिक मानते हैं। यह नित्य परिचित तथा धर्म-जागृति का एकमात्र आधार है, अतः धर्म-दृष्टि से भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ।

—विनोबा भावे, रामायणांक, पृ० ५०३

एक विद्वान लेखक के रूप में तुलसी की बड़ी प्रशंसा की है[1] साथ ही डॉ० स्मिथ को भी एक पत्र में लिखा था कि मैं अब भी सोचता हूँ कि तुलसीदास समस्त भारतीय साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। अन्य विदेशी विद्वानों ने भी खुलकर उनकी प्रशंसा की है।[2] यह पूर्ण रूप से स्पष्ट तभी हो सकता

१. डॉ० जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि आधुनिक काल में तुलसीदास के समान दूसरा ग्रन्थकार नहीं हुआ है।

—Indian Antiquity, P. 85 of 1893

साथ ही वे लिखते हैं :—

"I give much less than the usual estimate when I say that fully ninety millions of people base their theories of moral and religious conduct upon his (Tulsidas) writings. If we take lhe influence exercied by him at the present time as our test, he is one of three or four writers of Asia.........................Over the whole Gangetic Valley his great work (The Ramayana) is better known than the Bible is in England.

There is..................When occasion requires it sententious aphoristic method of dealing with narrative, which teems with similes drawn, not from the traditions of the schools, but from nature herself and better than Kalidasa at his best.

—Encyclopaedia of Religion and Ethics,
P. 471, 1921 Edition.

२. (क) रेवेरेण्ड एडविन ग्रीब्स (मेलबर्न, इंग्लैण्ड) ने लिखा है—
वह हमारे केवल प्रशंसा के पात्र नहीं, प्रेम के भी हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी साहित्य में ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रासाद से लेकर एक निर्धन की कुटिया तक इतना अधिक प्रसार हो।

—कल्याण, रामायणांक, पृष्ठ ३४२

है जब ऐतिहासिक दृष्टि से तुलसी को समकालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में देखा जाय। तुलसी की वाणी अपने समय में महत्त्वपूर्ण थी, यह उस समय की और परवर्ती साहित्यकारों की उक्तियों और उन पर पड़े प्रभाव से प्रकट होता है। वे तब से अब तक भारतीय साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं, यह उनके रामचरितमानस के देशव्यापी प्रचार, पाठ एवं विभिन्न भाषाओं में किये गये अनुवादों से स्पष्ट हो जाता है। ग्राउज महोदय ने बहुत पहले रामचरित मानस का बड़ा सुन्दर अँग्रेज़ी में अनुवाद किया था और अब तो रूसी भाषा में भी वरान्निकोव ने पद्यानुवाद, एक विस्तृत भूमिका के साथ किया है। यह सब उनके महत्त्व और गौरव को स्पष्ट करता है।

तुलसीदास जी पर लिखे गये हिन्दी ग्रन्थों की भी एक लम्बी सूची है जिनमें से प्रमुख १. रामचन्द्र शुक्ल कृत, तुलसीदास, २. श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल कृत, गोस्वामी तुलसीदास, ३. बलदेव प्रसाद मिश्र कृत, तुलसी-दर्शन, ४. रामनरेश त्रिपाठी कृत, तुलसीदास और उनकी कविता, ५. माताप्रसाद गुप्त कृत, तुलसीदास, ६. चन्द्रबली पांडेय कृत, तुलसीदास, ७. व्यौहार राजेन्द्रसिंह कृत, गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना,

---

(ख) डॉ० 'के' ने अपने ग्रन्थ हिन्दी लिट्रेचर में लिखा है—
हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान निस्सन्देह सर्वोच्च है और उनकी रामायण न केवल भारत में ही, वरन् समस्त संसार में सुविख्यात है। (पृष्ठ ४७)

(ग) डॉ० जे० एस० मैक्फी ने अपने ग्रन्थ 'दि रामायण ऑफ तुलसीदास ऑर दि बाइबिल ऑफ नार्दन इन्डिया' की भूमिका में लिखा है—
गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में भक्ति का जो उच्च और विशुद्ध भाव आता है उससे बढ़कर उच्च भाव और कहीं नहीं दिखलायी देता।

८. रामबहोरी शुक्ल कृत, तुलसीदास ९. कामिल बुल्के कृत, रामकथा : उद्भव और विकास, १०. परशुराम चतुर्वेदी कृत मानस की रामकथा तथा ११. राजपति दीक्षित कृत, तुलसीदास और उनका युग हैं। इन समस्त ग्रन्थों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में विशेष सामग्री देने वाली कृति माताप्रसाद गुप्त कृत, तुलसीनास है और इस सम्बन्ध में विशेष दृष्टिकोण

(घ) इसी प्रकार के प्रशंसापूर्ण भाव श्री नटेशन के ग्रन्थ 'रामचन्द्र टु रामतीर्थ' ग्राउज के अनुवाद, कार्पेन्टर के 'थियोलाजी आफ तुलसीदास', तथा वरान्निकोव के रामचरित मानस के रूसी पद्यानुवाद की भूमिका में देखने को मिलते हैं। वरान्निकोव का रूसी भाषा में मानस का पद्यानुवाद अद्भुत महत्त्व रखता है। अनुवाद की भूमिका में तुलसी के महत्त्व का मूल्यांकन है। एक स्थात पर उन्होंने कहा है कि—

भारतीयों के लिये यह (रामचरित मानस) एक धर्म-पुस्तक, एक प्रकार की बाइबिल ही बन गयी और इसे जो लोकप्रियता, प्रेम और आदर प्राप्त हुआ, वह इसके पहले अन्य किसी भी भारतीय ग्रन्थ को कभी प्राप्त नहीं हुआ। उत्तर भारत में तो इससे अधिक लोकप्रिय और कोई ग्रन्थ नहीं। इसके धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक और सामाजिक विचारों ने सदियों से भारतीयों के मत-निर्माण में गहरा असर डाला है और आज भी डाल रहे हैं। एक अमर साहित्यिक कृति के रूप में रामायण भारतीय काव्य का एक अनुपम रत्न है। इसकी रचना भारतीय काव्य-परम्परा की भौतिक और गंभीर प्रणाली के अनुरूप ही हुई है, जो यूरोपीय प्रणाली से सर्वथा भिन्न है।

—नया समाज, नव० १९५१, डा० महादेव साहा का लेख

प्रदान करने वाले ग्रन्थ रामनरेश त्रिपाठी कृत, तुलसीदास और उनकी कविता तथा चन्द्रबली पांडेय और रामबहोरी शुक्ल के ग्रन्थ हैं। माताप्रसाद गुप्त ने समस्त सामग्री को सामने रख कर कोई निर्णय नहीं दिया, त्रिपाठीजी का आग्रह सोरों में तुलसी की जन्मभूमि के प्रति तथा रामबहोरीजी का राजापुर और चन्द्रबलीजी का अयोध्या के लिए है। बलदेवप्रसाद मिश्र का तुलसीदर्शन गोस्वामीजी के दार्शनिक मत का स्पष्टीकरण करने वाला ग्रन्थ है और समन्वय-साधना में तुलसीदास के समन्वयात्मक दृष्टिकोण को प्रकट किया गया है। कामिल बुल्के के ग्रन्थ में रामकथा के स्वरूप और विस्तार का अध्ययन हुआ है और इस प्रसंग में बलदेवप्रसाद मिश्र की 'मानस में रामकथा' और परशुराम चतुर्वेदी की 'मानस की रामकथा' पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। काव्य की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल की कृति, रामनरेश त्रिपाठी और चन्द्रबली पांडेय के ग्रन्थ अपनी-अपनी विशेषताओं से युक्त हैं, पर शुक्लजी के ग्रन्थ के समान मार्मिक विश्लेषण अभी और अधिक होने की आवश्यकता है। राजपति दीक्षित ने समकालीन परिस्थितियों और धार्मिक भावना का विशेष रूप से अध्ययन किया है। अतः इन ग्रन्थों में अपने-अपने दृष्टिकोण से एक या अनेक पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

तुलसीदास के सम्बन्ध में एक ही प्रसंग पर कई दृष्टियों से अध्ययन किया जा सकता है, साथ ही अब भी समस्त क्षेत्र पूर्णरूप से खोजे नहीं जा सके। वास्तव में आज हमारी आवश्यकता है गम्भीर चिन्तन और अध्ययन की और उसके फलस्वरूप प्रौढ़ और निश्चित विचार देने की। एक ओर हमारा विद्यार्थी-समाज है और दूसरी ओर विदेशी तथा विप्रान्तीय विद्वन्मंडली, जो हमारे कवियों के सम्बन्ध में निश्चित और यथार्थ विचारों की अपेक्षा रखती हैं। अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ, 'तुलसी रसायन' में विभिन्न प्रसंगों पर कुछ निश्चित बातें कहने का प्रयत्न किया गया है। निश्चित ही उनका आधार पूर्ववर्ती विद्वानों की कृतियाँ, व्याख्याएँ और दृष्टिकोण हैं और गोस्वामी के ही शब्दों में—

अति अपार जे सरितवर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परमलघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं।।

वाली ही दशा मेरी है। अतः मैं सभी विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ।

'तुलसी रसायन' में समकालीन परिस्थिति के प्रकाश में गोस्वामी जी के महत्त्व को देखने का प्रयास किया गया है। परिस्थितियों का चित्रण अन्यत्र भी मिलता है, पर इसमें उनके प्रकाश में निश्चित निष्कर्षों पर पहुँचने की चेष्टा है। ऐसा ही प्रयत्न उनकी जीवनी के प्रसङ्ग में भी है। तुलसी के काव्य का अलंकार, रस, भाव, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से ऊपर कहे गये ग्रन्थों तथा अन्य लेखों में अध्ययन किया जा चुका है, अतः उसको पुनः प्रस्तुत न करके केवल तुलसी की कला-सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं का परिचय यहाँ दिया गया है और यही दृष्टि तुलसी के 'दार्शनिक विचार' शीर्षक प्रसंग में भी है, जहाँ संक्षेप में उनकी धारणा को स्पष्ट रूप से रखा गया है। तुलसीदास की कृतियों का सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन अभी तक नहीं हुआ था, अतः इस अध्ययन में तीन-चार शीर्षकों के अन्तर्गत उनके राज्यादर्श, समाजवादी और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रकट किया गया है। ये समस्त प्रसङ्ग गोस्वामी जी के कृतित्व का मूल्य और उपयोगिता आज की दृष्टि से आँकते और स्पष्ट करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने युग को स्वच्छन्दता की भावना प्रदान की। राजनीतिक दासता के होते हुए भी, किस प्रकार स्त्री-पुरुष आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्वच्छन्दता प्राप्त कर सकते हैं, यह उनके भक्ति के संदेश और राम के चरित्र-चित्रण से स्पष्ट है। संसार को भ्रम और अनित्य कह कर उन्होंने हमारी ऐहिक आकांक्षा-सम्बन्धी परवशता से हमें मुक्ति प्रदान की और भक्ति सर्वजनसुलभ होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ है, यह बताकर हमारी मानसिक दासता को दूर कर दिया। जिस स्वतंत्रता को आज हम पाया हुआ कहते हैं, वह बाह्य है। इसके साथ यदि हमारी आन्तरिक परतन्त्रता भी मिट जाये तो हम वास्तव में स्वतंत्र कहे जा सकते हैं और तुलसी तथा अन्य सन्त कवियों ने

इसी का द्वार हमारे सामने उस युग में खोला था, जबकि ऐसी बातों के लिए जबान खोलना भी संभव न था ।

तुलसी का दूसरा रचनात्मक कार्य है, पूर्ण जीवन की कल्पना । उन्होंने राम के चरित्र-चित्रण में एक सर्वाङ्गीय सम्पन्न जीवन का चित्र अंकित किया है । साथ ही यह भी बताया है कि जीवन को हमें किस रूप में देखना चाहिए । मानव-जीवन, कर्मक्षेत्र है । इसमें त्याग और बलिदान के अवसर बहुत कम लोगों को प्राप्त होते हैं । राम के जीवन में इसी कर्मठ व्यक्तित्व का प्रकाशन है, जब वे कहते हैं—

जो न जाहुँ बन ऐसेहुँ काजा । प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा ।।

जीवन की पूर्णता का अनुभव और उसके प्रति कर्तव्य-भावना जाग्रत करने वाला आधुनिक युग के लिए तुलसी का सन्देश महत्त्वपूर्ण है । उनकी वाणी आज भी हमारे लिए प्रेरक है । अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में उनकी विविध रचनाओं के कुछ चुने हुए छन्द अन्त में संकलित कर दिये गये हैं । यही वास्तव में 'तुलसी रसायन' है, शेष सब उसकी भूमिका-मात्र । आशा है कि 'दारु विचारु न करिहि कोउ समुझिहि मलय प्रसङ्ग ।'

दीपावली सं० २०१० वि०
लखनऊ

—भगीरथ मिश्र

विषयानुक्रम

जीवनी-खंड

रचना-खंड

आलोचना-खंड

संग्रह-खंड

जीवनी-खण्ड

तुलसीदास : युग

समकालीन परिस्थिति

कवि, परिस्थिति-विशेष में उत्पन्न होता, बढ़ता, संस्कार ग्रहण करता, प्रेरणा प्राप्त करता, बनता और उस परिस्थिति को अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित करता है, यह ठीक है; परन्तु साथ ही यह भी ठीक है कि वह अपनी समसामयिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया-स्वरूप बहुत कुछ उन्हें परिष्कृत करने और बनाने का भी कार्य करता है। वह कवि नहीं जो अपनी स्थिति से जन्म और जीवन ग्रहण करके अपने भावों और विचारों के द्वारा वायु-मंडल को सुरभित, विकसित और प्रफुल्लित न कर दे। यदि वह युग का प्रतिनिधित्व करता है, तो वह युग का निर्माण भी करता है। यह सभी महान् कलाकारों के सम्बन्ध में सत्य है, अतः किसी कवि का अध्ययन करने में उसके दोनों पक्ष देखना हमारे लिये अनिवार्य हो जाता है। पहले तो हमें यह देखना होता है कि कहाँ तक समसामयिक परिस्थितियों ने किसी कवि को बनाने में योग दिया है और फिर यह भी समझना होता है कि उसने अपने युग तथा आगामी युगों को कहाँ तक प्रभावित किया है। गोस्वामी तुलसीदास का अध्ययन हम इन्हीं दृष्टियों से करेंगे।

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अन्तर्गत रामचरित मानस की रचना एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण घटना है। तुलसी की परिस्थितियों ने, उनके युग ने, उनके माता-पिता ने, तुलसी को जन्म देकर कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया; परन्तु तुलसी ने मानस की रचना करके एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया है। अतः तुलसी की महत्ता अपनी ही निजी है। उनकी परिस्थितियों ने तुलसी को मानस-जैसी कृति की रचना के लिए कोई भी सुविधाएँ नहीं दीं, वरन् सामान्य-रीति से जो सुविधाएँ ऐसे व्यक्ति को मिल सकती हैं, वे भी उनसे छीन लीं। उनके शारीरिक, मानसिक, नैतिक किसी भी प्रकार के विकास में सहायक उनकी

पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियाँ नहीं थीं, अतः जो कुछ महानता इन्हें प्राप्त हुई वह परिस्थिति-प्रदत्त नहीं, वरन् निजी प्रतिभा और शक्ति के रूप में है। हाँ, परिस्थितियों ने इनकी प्रतिभा और महानता को प्रखर और जागरूक रखने के लिये अवश्य महत्त्वपूर्ण काम किया। ऐसे ही जैसे कोई विषम और प्रतिकूल परिस्थितियों के थपेड़े खाकर अपनी सामर्थ्य के प्रति सचेत हो जाता है, वैसे ही सचेतना एक असीम शक्ति के ऊपर विश्वास के रूप में तुलसी के भीतर जाग्रत हो सकी।

राजनीतिक स्थिति

गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रादुर्भाव-काल १५वीं शताब्दी ईसवी का अन्त अथवा १६वीं शताब्दी ईसवी का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार उस समय पठानों (लोदी-वंश) का शासन-काल समाप्त हो रहा था और मुगलों का भारतीय शासन-क्षेत्र में पदार्पण। १५२६ ई० में बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया[1] और सन् १५२६ से १५३० तक दिल्ली का राजशासन किया। उसके बाद हुमायूँ का और सन् १५५६ से १६०५ तक अकबर का राज्यकाल रहा। तुलसीदासजी ने पठानों और मुगलों के शासनकाल के महत्त्वपूर्ण अंश को अपनी आँखों देखा अथवा श्रुत अनुभव प्राप्त किया। बड़े-बड़े राजकीय परिवर्तन उनके समय में हुए। शासन को प्राप्त करने के लिये परस्पर लड़ाई-झगड़े उस युग की विशेषता थी। क्या राजा, क्या प्रजा सभी का जीवन स्थिरता और सुरक्षा से हीन था। उस समय कुछ भी स्थायी न था।[2] राज-

१. स्मिथ : अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ११

2. On the other hand, a very small fault, or a trifling mistake, may bring a man to the depths of misery or to the scaffold and consequently every thing is uncertain. Wealth, position, love, friendship, confidence, everything hangs by a thread. Nothing is permanent.

—Jahangir's India : by Moreland, 56.

नीतिक परिस्थिति की विशेषताओं का संक्षिप्त निर्देशन इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. राजकीय परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से हो रहे थे।

२. इस राज्य-परिवर्तन में अधिकांशतः अधिकार-लिप्सा और शक्ति ही प्रेरक थी, कोई नियम, मर्यादा या आदर्श विद्यमान न थे। भतीजा चाचा का, पिता पुत्र का, भाई भाई का वध कर या बन्दी कर राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता था।

३. राजा और शासक, प्रायः अशिक्षित, अहम्मन्य, विलासी और क्रूर थे। शासन को अपने अधिकार में रखने की ओर वे अधिक सचेत थे, जन-कल्याण की ओर नहीं।

४. अकबर के पूर्ववर्ती राजाओं के अस्तव्यस्त और अव्यवस्थित शासन-काल में कोई भी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति न हुई थी।

उपर्युक्त बातों का तुलसी के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन में प्रतिक्रिया-स्वरूप भारतीय रघुवंशी राजाओं का आदर्श शासन जाग्रत हुआ, जो अत्यन्त प्रजावत्सल, त्यागी, वीर और गुणसंपन्न थे। अतः इन परस्पर लड़ते-झगड़ते और अपने सगे-सम्बन्धियों का रक्त बहाते राजाओं के सम्मुख उन्होंने राम के परिवार का आदर्श रखा, जहाँ पिता की आज्ञावश एक राज्य का अधिकारी पुत्र बनवास ग्रहण करता है और उसी का दूसरा भाई वंश-मर्यादा और भ्रातृ-प्रेम का पालन करता हुआ राज्य को ठुकरा देता है और बड़े भाई के आने तक केवल उसे धरोहर रूप में रखता है। इस आदर्श को सामने रखकर उन्होंने अपने युग में रामराज्य की स्थापना करनी चाही, जो वाह्य विजयों पर नहीं, वरन् हृदय और मानस पर युग-युग तक कायम रह सका। पठानों और मुगलों का साम्राज्य, संसार से और भारत से उठ गया, पर तुलसी का सांस्कृतिक रामराज्य आज भी दृढ़ता से हमारे बीच जमा हुआ है। रामराज्य की उच्च धारणा रखने वाले तुलसी को तत्कालीन राजाओं की अशिक्षा और क्रूरता कितनी खटकती थी, यह उनके खीझ-भरे नीचे के दोहे से प्रकट है :—

गोंड, गँवार नृपाल कलि यवन महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद अब, केवल दंड कराल ।।[१]

मानवता और करुणा से ओत-प्रोत तुलसी का मानस इस क्रूरता को सहन करने में असमर्थ था इसलिए उन्होंने अपने आस-पास मानसिक रामराज्य बना लिया था, जिसमें वे स्वयं जीवनपर्यन्त रहे और अपने बाद भी उसे छोड़ गये। उक्ति है कि एक बार अकबर के दरबार का मनसबदारी का प्रलोभन मिलने पर उन्होंने कहा था :—

हम चाकर रघुबीर के पटब लिखो दरबार ।
तुलसी अब का होंहिगे नर के मनसबदार ।।

अत: हम कह सकते हैं कि तुलसी के संवेदनशील मानस पर प्रेरणात्मक प्रभाव डालने में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का हाथ था ।

सामाजिक स्थिति

तुलसी के समय सामाजिक ढाँचा तो दूसरा था, पर व्यावहारिक स्थिति उससे भिन्न थी। उस समय वर्ण-व्यवस्था थी, ऊँच-नीच का भेद खूब था, आश्रम-व्यवस्था नहीं थी, पर संन्यासी, साधु, भक्तों, योगियों आदि का आदर था, उनके प्रति सम्मान का भाव था। पारिवारिक जीवन में दिखावे की मर्यादा, बंधन रूप में थी; उसका आन्तरिक स्फुरण नहीं था। स्त्री को परिवार में बंधन अनेक थे, भय अनेक थे, पर स्वच्छन्दता और अधिकार कम। आर्थिक दृष्टि से वह पुरुष के ऊपर आश्रित थी। मुगलों और पठानों की क्रूर सौंदर्य-लिप्सा ने उसे वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्त्व ही दे रखा था। उस समय जन-साधारण में तो नहीं, पर समृद्ध समाज में बहुपत्नीत्व प्रचलन था। हिन्दू-समाज में भी यह वर्जित न था, पर मुसलमानों के बीच तो यह अधिकांश रूप

---

१. पठान बादशाहों और जहाँगीर जैसे मुगलों के द्वारा लोगों को कठोर दंड दिया जाता था। सिर उतार लेना, फाँसी चढ़ाना, खाल खिंचवा-कर मरवाना, ये दंड विरोधियों और विद्रोहियों के लिये प्रचलित थे।
—स्मिथ : अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ३१३, द्वितीय सं०

से देखने को मिलता था। बादशाह, छोटे-छोटे शासक और पदाधिकारी-गण एक से अधिक स्त्रियाँ रखते थे, जिसका दुष्परिणाम विलासिता और दुराचार था उदात्त सामाजिक और देशोन्नति की भावनाओं के स्थान पर विलासिता, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य का ही अधिकार था और शासक, धन और विलासलिप्सा[1] से ही परिपूर्ण थे और इसका प्रभाव सामान्य जनों के चरित्र पर भी पड़ा होगा, विशेषरूप से शासकवर्ग की जनता तो इससे अवश्य प्रभावित थी।

हिन्दू-समाज में कुछ राजाओं और बादशाह के कृपापात्रों के अतिरिक्त अधिकांश जनता महत्वाकांक्षाहीन, निर्धन और जीवन से उदासीन थी। अधिकांश जन-साधारण का जीवन राजाओं और अधिकारी-जनों की सुख-समृद्धि जुटाने में ही व्यतीत होता था। वे परिश्रम भी करते थे, तो वह अपने सुख या आवश्यकता-पूर्ति के लिए न हो पाता था, क्योंकि वह सब कुछ उस युग के शक्तिसम्पन्न जनों के बहते विलास की महाधार में बहकर मिलता जाता था और इस प्रकार जन-साधारण सतत आतंक, दुर्दशा और गरीबी में जीवन व्यतीत कर रहा था।[2] यद्यपि भूमि उर्बर थी, पर अपनी विवशता और साधन-

1. The Governors are usually bribed by the thieves to remain inactive, for avarice dominates manly honour, and instead of maintaining troops, they fill and adorn their mahals with beautiful women and seem to have the pleasure-house of the whole world within their walls.

—Moreland's Translation of Jahangir's India written in Dutch by Fransico Pelaert. Ed., 1925

2. The land would give a plentiful, or even an extraordinary yield, of the peasants, which owing to some small shortage of produce, are unable to pay in full amount of revenue-farm are made prize, so to speak by their masters or governors and wives and children sold, on the pretext of a charge of rebellion.

—Moreland, P. 74

हीनता के कारण उसमें लोग अच्छी उपज नहीं प्राप्त कर पाते थे और सामान्य जनता का जीवन करुणा और वेदना से भरा हुआ था क्योंकि राजा प्रजा के लिए नहीं, वरन्, प्रजा राजा के लिए थी । धनी और शासक-समुदाय की स्वार्थपूर्ण असामाजिक लिप्सा और शक्ति के दुरुपयोग के कारण साधारण जनों का जीवन दुःख और शोक का आवास था, जिसका परिणाम दरिद्रता, आचरण-हीनता, आत्मविश्वास की कमी, जीवन के प्रति उदासीनता और निर्वेद एवं अतिशय ईश्वरोन्मुखता थी, इस युग में हिन्दू-समाज में भक्ति-भावना को जाग्रत करने का यही बहुत बड़ा कारण था ।

अकबर का शासन-काल किन्हीं अंशों में अच्छा था, फिर भी वह तुलनात्मक दृष्टि से ही । उसके समय में पड़े हुए दुर्भिक्षों के समय जनता में त्राहि-त्राहि मची थी । सन् १५५६ और १५७३-७४ में पड़े हुए दुर्भिक्षों में आदमी अपने ही सगे-सम्बन्धियों को खा जाते थे । चारों ओर उजाड़ दिखायी देता था और खेत जोतने के लिए जीवित आदमी बहुत कम रह गये थे ।[१] इस प्रकार दुर्भिक्ष, अकाल और महामारी के समय जनता की रक्षा का ध्यान शासकों को बहुत कम था । अबुलफजल ने अपने 'आइन-ए अकबरी' में बहुत कम विवरण इन दुर्भिक्षों का दिया है । दुर्भिक्ष आदि तो दैवी आपत्तियाँ होती है फिर भी व्यवस्थित राज्य में उसका समुचित प्रबन्ध कर दिया जाता है । यह मानते हुए भी कि उस समय समुचित व्यवस्था न थी और अकबर ने तो थोड़े-बहुत रक्षा के उपाय भी किये थे, यह निश्चित हो जाता है कि समाज की व्यवस्था बड़ी बिगड़ी हुई थी और संगठन छिन्न-भिन्न था । हिन्दू

1. So much is wrong from the peasant that even dry bread is scarcely left to fill their stomachs.

—Moreland, P. 54

१. देखिए बदाऊँनी की 'तारीख'—रैंकिग का अनुवाद, पृष्ठ ५४६-५१ तक तथा तुजुक-ए-जहाँगीरी, पृष्ठ ३३०-४४० रोजर्स और ब्रेव-रिज-द्वारा सम्पादित ।

समाज में वर्ण-व्यवस्था का शिथिल ढाँचा रह गया और उसमें कर्म-कौशल त्याग और संगठन की भावना विलीन हो गई थी, वही विकृत होकर अब उपहास का कारण बन बैठी थी, जिसका संकेत इतिहासकारों ने[1] भी किया है और गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने रामचरित मानस और कवितावली में उल्लेख किया है।

इतिहासकारों-द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त दशा, सामाजिक कल्याण का ध्येय रखने वाले किसी भी व्यक्ति के मानस को द्रवित कर सकती है और तुलसीदास का मन भी अपना निजी, समाज और देश की दशा को देखकर अतिशय द्रवित हुआ, यह स्वाभाविक था। रामचरित मानस से उत्तरकांड के कलियुग-वर्णन में और कवितावली के उत्तरकांड में समकालीन सामाजिक दशा का जो चित्रण तुलसी ने किया है, वह केवल काल्पनिक नहीं, वरन् इतिहास-सिद्ध है, जैसा हम आगे देखेंगे। संक्षेप में तुलसी का समकालीन स्थिति का चित्रण इस प्रकार है :—किसान को खेती करने के साधन उपलब्ध नहीं, भिखारी को भीख नहीं मिलती। न वणिक का व्यापार ही चलता है और न नौकर को नौकरी मिलती

1. Of the rich in their great superfluity and absolute power, and utter subjection and poverty of the common people, poverty so great and miserable that the life of the people can be depicted or accurately described only as the home of stark want and the dwelling place of bitter woe. Never the less, the people endure patiently professing thet they do not deserve anything better : and scarcely any one will make an effort, for a ladder by which to climb higher is hard to find, because a workman's children can follow no occupation other than that of their father's nor can they intermarry with an other caste.

—Jahangir's India : Moreland's translation. P.60.

है । लोग जीविका-हीन हैं और सोच एवं चिन्ताग्रस्त दशा में क्षीण हो रहे हैं। एक दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायँ और क्या करें ? इस समय दरिद्रता रूप रावण ने संसार को दबा रखा है ।[1] इसके परिणामस्वरूप चारों ओर कुकर्म बढ़ रहे हैं और व्यक्तिगत, सामाजिक और धार्मिक सदाचार सब नष्ट हो रहे हैं। सभी पेट की आग से पीड़ित हैं और अपने उदर-पोषण के लिए कारीगर, व्यापारी, भाट, नट आदि अपने गुण दिखलाते हैं । पेट को भरने के लिए बेटा-बेटी को भी बेच देते हैं ।[2] गौरवशाली, दानी और त्यागी व्यक्तियों का सम्मान नहीं है । इस सामयिक (कलियुग के) प्रभाव ने सबके मन को मलिन कर रखा है ।[3] कवितावली में आया यह वर्णन महामारी, रुद्रबीसी आदि के वर्णन से भिन्न है और सम-सामयिक सामान्य परिस्थिति का ही इतिवृत्त है। मानस के उत्तरकांड में कलियुग-वर्णन जन-मन की मलिनता का और स्पष्ट प्रमाण देता है । परन्तु उसमें प्रायः पौराणिक परम्परा का पालन-सा है और काकभुशुंडि के पूर्ववर्ती जीवन में अनुभूत किसी कलियुग का चित्रण है । भागवत में भी कलियुग-वर्णन है, जिसमें आगे आने वाले कलियुग के धर्मों के रूप में इस प्रकार की बातें कही गयी हैं, जैसे—कलियुग में विपरीत धर्म का आचरण होगा, कुटुम्ब के भरण-पोषण में ही दक्षता और चतुराई होगी, यश और धन के लिए ही धर्म-सेवन होगा । पांडित्य के नाम पर वाक्-चपलता होगी । चारों ओर दुष्ट जन फैलेंगे । चोर एवं दुष्ट बढ़ेंगे । वेद-ज्ञान पाखंड से ढक जायेगा । राजा प्रजा के भक्षक होंगे । ब्राह्मण, लोभी और भोगप्रिय होंगे । भृत्य द्रव्यहीन स्वामी को छोड़ देंगे और स्वामी आपत्तिग्रस्त भृत्य को । धर्म को न जानने वाले धर्म की दुहाई देंगे । जनता दुर्भिक्ष और कर से क्षीण सदैव चिन्ताग्रस्त रहेगी । कौड़ी के लिए अपने प्रियजनों तक की हत्याएँ होंगी, आदि ।[4]

---

१. कवितावली, उत्तरकांड, ९७ छं०

२. कवितावली, उत्तरकांड ९६ छं०

३. कवितावली, उत्तरकांड ९९ छं०

४. श्रीमद्भागवत, द्वादशस्कंध; अध्याय २, ३

तुलसीदास के मानस के उत्तरकांड में लगभग इसी प्रकार की बातें हैं, पर अनेक बातें ऐसी हैं, जो तात्कालिक स्थिति के चित्रण के रूप में हैं। तुलसी का वर्णन है कि कलियुग में ऐसा है। भागवत में है कि ऐसा होगा। अतएव उतना ही अन्तर हमें स्पष्ट दीखता है। तुलसी के कलियुग-वर्णन में प्रमुखतया बल वर्णाश्रम-धर्म की हीनता पर दिया गया। वर्णाश्रम-व्यवस्था पर तुलसी का अटल विश्वास है। इसके नष्ट होने पर सामाजिक मर्यादा नष्ट हो जाती है, लोकचेतना कुंठित हो जाती है और तब यदि राजा भी अनाचारी हुआ तो सत्यानाश ही समझिए। परन्तु यदि वर्णाश्रम-व्यवस्था चलती रहती है, तो राजा की अनाचारिता भी लोक-चेतना के सम्मुख पराजित होती है। इसी को भंग होते देखकर तुलसी क्षुब्ध होते हैं और कहते हैं :—

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट कीन्ह बहु पंथ।९७।
वरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जाकहँ जो भावा। पडित सोइ जो गाल बजावा॥
सोई सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुणवन्त बखाना॥
जाके नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

× × ×

मातु पिता बालकन बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

सौभागिनी विभूषन हीना। बिधवन कर सिङ्गार नवीना॥
नारि मुई घर सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी॥[1]॥

तुलसी का उपर्युक्त वर्णन भागवत से प्रेरित होता हुआ भी समकालीन अनुभव पर आधारित है। यह उसके पूर्ण विवरण से स्पष्ट हो जाता है, जिसका आंशिक संकेत यहाँ पर किया है। अपने युग की इस प्रकार की सामा-

१. उत्तरकांड, दोहा, ९७, ९८, १००

जिक स्थिति से क्षुब्ध होकर तुलसी ने राम के परिवार के ग्रादर्श तथा रामराज्य की सामाजिक स्थिति को सामने रखना चाहा था, क्योंकि उनका विश्वास था कि रामराज्य का ग्रादर्श सामने ग्राने पर निश्चय ही लोगों का युग-प्रभाव से कलुषित मन, नवीन चेतना ग्रौर स्फूर्ति से सम्पन्न होगा ग्रौर उस समाज की फिर से प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया जायेगा ।

धार्मिक स्थिति

पूर्ववर्ती धार्मिक परंपराएँ

गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व उत्तर ग्रौर दक्षिण भारत की ग्रपनी निजी धार्मिक परम्पराएँ, वहाँ की राजनीतिक ग्रौर सामाजिक स्थितियों एवं धार्मिक प्रतिक्रियाग्रों के फलस्वरूप बन गयी थीं, जिनमें से किसी का भी ग्रध्ययन हम एकान्तिक ग्रौर विच्छिन्न रूप से नहीं कर सकते। यदि हम ध्यान से देखें तो सामाजिक प्रतिक्रिया ग्रथवा एकांगी दृष्टिकोण के फलस्वरूप जो धार्मिक परिवर्तन होते गये, उन्हें विकास की ग्रवस्थाग्रों के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। वैदिक साहित्य के ज्ञान, उपासना ग्रौर कर्मकाण्ड के पक्षों को लेकर परवर्ती धार्मिक दृष्टियाँ फूटीं। उपनिषद् ग्रौर वेदान्त, ज्ञान ग्रौर चिन्तन की उत्कृष्ट ग्रवस्था का द्योतक है, जिसकी ग्रद्भुत परिणति शंकराचार्य के भाष्य में दिखलाई देती है। याज्ञिक हिंसा ग्रौर उसके ग्रन्तस्तल में व्याप्त लोलुप तृष्णा (जो कर्मकांड का प्रमुख ग्रंग थी) की प्रतिक्रिया-स्वरूप, बौद्ध ग्रौर जैन ग्रनात्मवादी धर्मों का विकास हुग्रा, जिसमें प्रत्यक्ष धर्म का परम्परागत ज्ञान ग्रौर संस्कारों से पूर्ण विच्छिन्न रूप दिखलाई पड़ता है। वर्णाश्रम की रूढ़िगत बुराइयों का भी सहज विरोध एवं साम्य तथा सामंजस्य-पूर्ण दृष्टि के साथ मानवता का संदेश देने वाले इन धर्मों ने दलित ग्रौर निम्न श्रेणी के वर्गों को विशेष ग्राकृष्ट किया। साम्य के भाव से विचार-पूर्ण हिन्दू धर्म का कोई विरोध न था। ग्रतः शांकर वेदान्त उसका खंडन करने में समर्थ हुग्रा, परन्तु ग्रद्वैत प्रतिपादन में भक्ति ग्रौर उपासना का क्षेत्र उन्मुक्त न था। ग्रतः उपासना पर ग्रधिक बल देने वाले दक्षिण में इस ग्रद्वैत का विरोध हुग्रा। यहाँ तक कि

शंकराचार्य को प्रच्छन्न-बौद्ध तक कहा गया। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्धिक चिन्तन की दृष्टि से अद्वैत सिद्धान्त विश्व की दार्शनिक मीमांसाओं में सर्वोपरि ठहरता है, फिर भी ज्ञान और बुद्धि को सन्तुष्ट करने पर भी दैनिक जीवन-सम्बन्धी रागात्मक व्यावहारिकता की इसमें कमी है। लोक-जीवन की दैनन्दिन कार्यप्रणाली में उसका उपयोग नहीं। सामाजिक अनुष्ठानों के विकास का उसमें कोई स्थान नहीं अतः उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप वेदान्त-सूत्रों की व्याख्याएँ अनेक विद्वानों-द्वारा की गयीं। रामानुजाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बार्क, मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य आदि दार्शनिक भक्तों ने लोक-जीवन-सुलभ व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं, जिनमें अधिकांश के अन्तर्गत प्रचलित समाजिक व्यवस्था से पूरा मेल-जोल था। इस प्रकार भक्ति की एक सुदृढ़ दार्शनिक पृष्ठभूमि बन गई थी। दक्षिण की इस भक्ति-पद्धति का प्रभाव तुलसी के समय में उत्तर भारत में भी प्रारम्भ हुआ और गोस्वामी जी स्वयं उसके एक प्रमुख प्रचारक रहे।

उत्तरी भारत की धार्मिक परम्पराएँ दक्षिण से कुछ भिन्न थीं। दक्षिण में न तो बौद्ध धर्म का ही इतना जन-व्यापी प्रचार हुआ था और न इस्लाम धर्म का ही कोई अधिक गहरा प्रभाव था। अतएव वहाँ की परिस्थिति के अनुरूप धार्मिक परम्पराओं का विकास हो रहा था। परन्तु उत्तरी भारत में दोनों का प्रभाव गहरा था। बौद्ध और जैन धर्म विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त हो गये थे। उनमें भी साधना और सदाचार की गर्हित कमी आ गयी थी, फिर भी इनके साम्य भाव का प्रभाव पड़ा और योगदर्शन को लेकर चलने वाले साधकों ने इस दृष्टि को अपना कर अपने नये सम्प्रदाय विकसित किये। सिद्धों, नाथों आदि के योग-परक सम्प्रदाय इसी प्रकार के हैं, जिसमें निर्गुण निराकार ब्रह्म का ज्योतिदर्शन, अनहद नाद-श्रवण, कुण्डलिनी-शक्ति-जागरण एवं योग सरीखी समाधि-अवस्था का-सा ध्यानानन्द प्रमुख महत्त्व रखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये सम्प्रदायन कोई नितान्त नवीन सम्प्रदाय नहीं हैं, वरन्, पातंजल योगदर्शन के आधार पर विकसित योग सम्प्रदाय हैं जो पूर्ववती परंपरा से पोषित हैं। इनमें आगे चलकर ज्ञान के पक्ष पर कम बल रह गया और साधना या क्रिया पर अधिक, साथ ही साथ अधिकांश ने तान्त्रिक रूप ले लिया

जिसमें लोगों को चमत्कृत करने का प्रयास अधिक था, साधना से आत्मिक विकास और आत्मा-परमात्मा की एकता का भाव कम।

इसी से प्रभावित निर्गुण सन्तमत भी है, जिसके प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं। परन्तु, तुलसी की भाँति कबीर भी समन्वयवादी थे, ऐसा प्रायः लोग नहीं समझते, पर तथ्य ऐसा ही है। कबीर-द्वारा प्रवर्तित सन्तमत के तीन पक्ष या भूमियाँ हैं। एक, सिद्ध-नाथ-सम्प्रदाय; द्वितीय, रामानन्द का भक्ति-मार्ग और तृतीय, सूफीमत और इस्लाम धर्म। कबीर ने इन तीनों का समन्वय किया है। तुलसी और कबीर दोनों ही स्वामी रामानन्द की शिष्य-परम्परा के प्रतिभा-सम्पन्न महात्मा हैं और उन्हीं के मत को लेकर चलने वाले हैं, अन्तर केवल यह है कि एक, एक पक्ष को लेकर चलता है और द्वितीय, दूसरे पक्ष को लेकर। यहाँ हमें कबीर के समन्वयवाद को स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है। कबीर के भीतर जो रूढ़ियों का खंडन और ज्योतिदर्शन आदि की बातें हैं, वे नाथ सम्प्रदाय और गोरख-पंथियों की हैं। अनेक कथन गोरख और कबीर के बिल्कुल एक से हैं।[१] इसके साथ ही साथ कबीर ने रामानन्द की भक्ति-पद्धति और राम नाम को प्रमुख आधार माना।[२] भक्ति को वे सर्वोपरि समझते हैं और उनकी सारी ज्ञान-चर्चा भक्ति के लिए ही है। इस भक्ति के भीतर सूफियों की प्रेम-साधना भी मिल गयी है, जो प्रेम की मस्ती में[३] मतवाले रहने

---

१. उनमनि सों मन लागिया, गगनहिं पहुँचा धाय।
चंद बिहूना चाँदना, अलख निरंजन राय॥ —कबीर
नीझर झरणें अमीरस पीवणां षटदल बेध्या जाइ।
चंद विहुँणां चांदिणां तहाँ देष्या श्री गोरख राय।'
—गोरख वाणी।

२. कबीर ग्रंथावली, पद ३४, ७५, १११, ११४, १२३, १३५, ३६० आदि।

३. हरि रस पीया जानिया, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता ढूँढ़त फिरै, नाहीं तन की सार॥
—कबीर ग्रंथावली

की चर्चा कबीर ने की है, वह सूफियों का प्रभाव है। अतएव रामानन्द के पर-ब्रह्म, निर्गुण राम को प्रमुख आधार मानकर, सिद्धों और नाथों की यौगिक साधना के सहारे, वे सूफियों की भाव-तीव्रता से ओत-प्रोत प्रेमाभक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं।

रामानन्द की भक्ति-पद्धति का दूसरा पक्ष सगुणोपासना है। तुलसी ने इसी को अपनाया है। कबीर का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम-एकता की स्थापना है और इसके लिए उन्होंने दोनों ही धर्मों की कट्टरपन्थी नीति और आचरणों का खंडन किया है। इस्लाम धर्म के अनुकूल वे मूर्तिपूजा और अवतार के विरोधी थे और एक ईश्वर की सत्ता को मानते थे। कबीर के समय इस विरोध की भावना के लिए एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी तैयार थी। महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के आक्रमणों और मूर्ति-भंजन के दृश्य ने मूर्ति और अवतार पर से जनता की आस्था को हिला दिया था। अत: वह निर्गुणो-पासना के लिए ही अधिक तत्पर थी। उच्चकुलीन हिन्दू और कट्टर मुस्लिम मुल्लाओं का विरोध होते हुए भी कबीर को जन-सामान्य के विश्वास का बल प्राप्त था और उस समय जन-साधारण और विशेषत: निम्न एवं अस्पृश्य वर्ग में कबीर के सन्तमत का विकास हुआ। तुलसी के समय तक कबीर की प्रतिभा क्षीण हो चुकी थी और अनेक पन्थों में उनकी वाणी का सार विभिन्न सम्प्रदायों में प्रवाहित हो रहा था, परन्तु उसमें वह ओज न था। अनेक पन्थ, भ्रम और विद्वेष को भी उत्पन्न करने वाले थे। इसी कारण से कबीर का व्यक्तिगत विरोध न करते हुए भी इस बहुसम्प्रदाय-वाद का विरोध तुलसी ने किया :—

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट कीन्ह बहु पन्थ ॥[1]

यहाँ प्रश्न उठता है कि निर्गुणोपासना के स्थान पर सगुणोपासना या साकारोपासना की आवश्यकता क्या थी? इसी प्रश्न के विश्लेषण में तुलसी का महत्त्व है। कबीर ने सगुण अवतारवाद का खंडन किया था यह कह कर कि

१. उत्तरकांड, ९७ का दोहा

'दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम कर मरम है आना।''
तथा :

दस अवतार ईसुरी माया। कर्ता कै जिन पूजा।
कहै कबीर सुनौ हो साधौ, उपजै खपै सो दूजा।।

यह तर्क सीधा है। आने-जाने वाली सभी वस्तुएँ माया हैं, अतः उसकी पूजा आवश्यक नहीं, परन्तु निर्गुण की पूजा भी आसान नहीं। साथ ही साथ सर्वसुलभ दार्शनिक दृष्टिकोण भी यह नहीं बन पाता। अतएव इसी प्रकार की चुनौती का उत्तर-सा देते हुए तुलसी ने उत्तरकांड में लिखा है :—

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जान कोइ कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनिमन भ्रम होइ।।

यह तुलसी की दृष्टिकोण है, जिस पर अद्भुत आस्था रखने के कारण ही वे उच्च दार्शनिक मनोवृत्त एवं व्यापक भक्ति का परिचय यह कह कर दे सके :—

सियाराम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरी जुग पानी।।

गोस्वामी तुलसीदास का उद्देश्य केवल निर्गुण मत का खंडन न था, वरन् उसमें व्याप्त कोई सर्वजन-सुलभ सामाजिक आदर्श प्राप्त न होने से उसको जनसाधारण के लिए अस्वीकार करना था। इसके स्पष्ट करने से पूर्ववर्ती प्रश्न का उत्तर भी मिल जाता है। निर्गुण संतमत समाज के संन्यासी जनों के लिए उपयोगी हो सकता था, जो समस्त सांसारिक जीवन के प्रति एक निर्वेद का भाव धारण कर सकते थे, पर वह सामाजिक जीवन के प्रति कोई उत्साह प्रदान करता हुआ, उन्हें दिखलायी न दिया। यह उदासीनता सामाजिक जीवन को निश्चय ही क्षीण कर रही थी। तुलसी ने इस बात का अनुभव किया कि लोक-जीवन के प्रति एक प्रबल आकर्षण उत्पन्न करना आवश्यक है, साथ ही यह आकर्षण धार्मिक चेतना के आधार पर होना चाहिए। अतः इसी लोक-जीवन को नवीन स्फुरण, प्रेरणा एवं सजीवता प्रदान करने के उद्देश्य से तुलसी ने आराध्य ईश्वर और निर्विकार परब्रह्म को सामाजिक क्षेत्र में उतारा जिसके परिणामस्वरूप समाज की जीवन-धारा में नवीन सांस्कृतिक प्रगति आ सकी। तुलसी

जीवन की सम्पूर्णता में विश्वास करने वाले व्यक्ति थे और उसी के अनुरूप पूर्ण लोक-धर्म की प्रतिष्ठा उन्होंने अपने ग्रंथों में की है। लोक-धर्म-युक्त सामाजिक दर्शन प्रदान करने में ही तुलसी की महानता छिपी है। अतः यह सिद्ध है कि धार्मिक पृष्ठिभूमि भी, तुलसी के दृष्टिकोण के औचित्य को ही नहीं, वरन् उसकी तीव्र आवश्यकता को सिद्ध कर रही है। उपर्युक्त पृष्ठभूमि में जब हम तुलसी के कृतित्व को देखते हैं, तभी हम उसका वास्तविक मूल्यांकन कर सकते हैं। अपने प्रमुख ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने अपने युग के प्रमुख प्रश्न का; कि क्या दशरथ के पुत्र राम ही, परब्रह्म हैं ? जिसका उत्तर कबीर आदि ने निषेधात्मक दिया था, विश्लेषण करके, युग-युगव्यापी सामाजिक मर्यादा और आस्था को ध्यान में रखते हुए, उसके वास्तविक हित के अनुकूल, उत्तर दिया है। इसी में उनकी युग-युगव्यापी महत्ता छिपी है।

साहित्यिक स्थिति

तुलसी का कवि-रूप उनके धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण को प्रकट करने का साधन-मात्र है, वह उनका प्रमुख ध्येय नहीं। तुलसी ने जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में पूर्ववर्ती समस्त परम्पराओं के प्रति उदार दृष्टिकोण रखा है, उसी प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में भी अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन सभी प्रकार साहित्यिक और लोक-साहित्यिक काव्य-शैलियों को अपनाने का प्रयत्न किया है। उनके पूर्व प्रचलित साहित्यिक पद्धतियों में प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

१. **वीरकाव्य पद्धति** :—यह वीरगाथा-काल के वीरों और राजाओं के गुणगान में प्रयुक्त पद्धति है, जिसमें कवित्त, छप्पय पद्धति, तोमर आदि तीव्र गतिगामी छन्दों में ओजपूर्ण वर्णन किये गये हैं। तुलसीदास का उद्देश्य यद्यपि प्राकृत जनों का गुणगान न था, फिर भी उन्होंने राम के चरित्र के वीरता और ओज के पूर्ण स्थलों पर इस प्रकार की शैली और छंदों का व्यवहार किया है। कवितावली में सुन्दर और लंकाकांडों में तथा रामचरित मानस में लंकाकांड के भीतर इस प्रकार की शैली प्रगलभता के साथ प्रकट हुई है।

२. **सिद्धों-नाथों तथा निर्गुणी सन्तकवियों की साखी-शैली** :—

इसमें प्रायः दोहों का प्रयोग है और यह उपदेश-प्रधान है। तुलसी की 'वैराग्य-संदीपिनी', 'रामाज्ञा-प्रश्न', 'दोहावली' आदि में इस शैली के दर्शन होते हैं।

३. प्रेमाख्यान प्रबन्ध काव्यों की दोहा-चौपाई वाली शैली :— इस शैली का प्रयोग जायसी, कुतुबन, मंझन आदि प्रेमगाथा लिखने वाले कवियों ने किया है। जायसी तो अयोध्या के पास ही जायस के रहने वाले थे। तुलसी की 'रामचरित मानस' तथा 'वैराग्य संदीपिनी' में इसी पद्धति का प्रयोग है।

४. कवित्त सवैयों की ललित शैली :—इसकी भी परम्परा प्रचलित थी। तुलसी के समकालीन गंग, ब्रह्म, नरहरि आदि कवि इसमें लिखते थे। तुलसी ने अपनी 'कवितावली' में ब्रजभाषा के माध्यम से इसी पद्धति को अपने अत्यन्त ललित रूप में प्रकट किया है। इसके कुछ छन्द तो इतने सुन्दर हैं कि जान पड़ता है कि रीतिकालीन कवियों को अपने कवित्त और सवैया लिखने में तुलसी से ही प्रेरणा मिली है। उदाहरणार्थ एक कवित्त और सवैया यहाँ दिया जाता है :—

कवित्त

सुन्दर बदन सरसीरूह नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत सुचि कर सर,
तून कटि मुनि पट लूटत पटनि के।
नारी सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै।
विधि बिरचे बरूथ विद्युत छटनि के।
गोरे को बरन देखि सोनो न सलोनो लागै,
सांवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के।

सवैया

वर दंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलनु की।

घूँघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करे तुलसी बलि जाऊँ लला इन बोलन की।

समस्त वर्णन में रूप-चित्रण और अंतिम पंक्ति में उनका प्रभाव स्पष्ट हैं, जो रीतिकालीन कवित्त-सवैयों की विशेषता बनी।

५. **पद-पद्धति** :—यह यों तो निर्गुण सन्त काव्य में भी मिलती है, पर विशेषतया : इसका प्रयोग कृष्ण भक्ति काव्य में सूर तथा अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा हुआ। इसका प्रयोग संगीत-कुशल कवियों द्वारा ही विशेष हुआ है। तुलसी ने अपने गीतावली, विनय-पत्रिका, कृष्ण गीतावली में पदावली को ही अपनाया है। इनके लिखे पद भी बड़े सुन्दर हैं। यद्यपि संगीत की दृष्टि से सूर और मीरा के पदों के समान नहीं, पर भाव-गांभीर्य और काव्य-सौन्दर्य में ये श्रेष्ठ हैं।

६. **लोक-गीत पद्धति** :—तुलसी लोक-गीतों से भी बहुत अधिक अनुप्राणित हुए थे। ऐसा जान पड़ता है कि लोक-गीत और लोक-संस्कृति उनके संस्कारों में ढल चुके थे। मांगलिक अथवा उत्सव-समारोहों में लोक-काव्य-प्रतिभा गीतों आदि रूप में मुखरित होती है। तुलसी के मानस पर उसका अमिट प्रभाव पड़ा था और वह उनकी रचनाओं से फूट निकला। लोक-गीतों की पद्धति हमें उनके 'पार्वती-मंगल,' 'जानकी-मंगल', 'रामलला-नहछू' तथा कहीं-कहीं 'कवितावली' और गीतावली' में देखने की मिलती है। पुत्रोत्सव का सोहर नहछू में गूँजता है, जिसकी प्रतिध्वनि गीतावली में पुत्रोत्सव-वर्णन में भी सुनायी पड़ती हैं। विवाहोत्सव के मंगल तो पार्वती और जानकी मंगलों में हैं ही। इसके अतिरिक्त कवितावली में कहीं-कही 'झूलना' नामक लोक-छन्द का भी बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है, जो उनकी ग्रहणशील मेधा का द्योतक है। बड़े ओज और मस्त गति से चलता हुआ यह झूलना छन्द बड़ा ही प्रेरक है :—

मत्तभट दसकंध साहस सइल
सृङ्ग विद्दरनि जनु व्रज टाँकी।
दसन धरनि धरि चिक्करत दिग्गज कमठ
शेष संकुचित संकित पिनाँकी।

चलत महि मेरु उच्छलित सायर सकल
विकलविधि बधिरदिसिविदिस झाँकी।
रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ।।

इसी प्रकार 'बरवै' को भी एक लोक-छन्द के रूप में लेना चाहिए। अवध में अनेक स्थानों पर झूलने की तरह होली तथा अन्य उत्सवों पर बरवै भी कहने की प्रथा है। और अवधी का यह ललित छन्द है, जिसका उपयोग तुलसी ने किया और जिस प्रकार मुग्ध होकर रहीम ने भी बड़ा ललित काव्य लिखा था।

यह तो छन्द आदि की दृष्टि से हुआ। कथासूत्र की दृष्टि से तुलसी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया और प्रबन्ध में भी महाकाव्य और खंडकाव्य दोनों लिखे। तुलसी ने नाटक नहीं लिखे। पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य में नाटकों का पूर्ण अभाव है, जिसका उत्तरदायित्व संभवतः उस समय की शासक संस्कृति पर है, जो नाटकों के विरोध में थी। फिर भी, अपने महाकाव्य के अंतर्गत तुलसी ने पौराणिक कथा-शृङ्खला-द्वारा सिद्धान्त-निरूपण वाली पद्धति, महाकाव्य की सर्गबद्ध शैली तथा नाटकों की नाटकीयता सब को मिलाकर एक बड़ी ही प्रभावशाली शैली का निर्माण किया है, जिसमें यथास्थान सभी का आनन्द आता है।

इतना ही नहीं, तुलसी के काव्य में विनय-पत्रिका के रूप में हम एक शुद्ध गीतिकाव्य ग्रन्थ पाते हैं। काव्य-प्रभेद की दृष्टि से उस समय इसकी कल्पना भी नहीं थी। यह तो पाश्चात्य काव्य-रूप है। फिर भी इसी पूर्णता के साथ समस्त प्रचलित काव्य-शैलियों में अपनी रचना को ढालने का तुलसी का प्रयास हमें आश्चर्य में डाल देता है।

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि क्या तुलसी ने चमत्कार-प्रदर्शन के लिए विभिन्न शैलियों में लिखा है अथवा रामचरित उन्हें इतना प्यारा था कि उसकी बराबर पुनरुक्ति वे करते हैं या उसकी भी कोई सामाजिक आवश्यकता थी? तुलसी का प्रमुख ध्येय विविध रचनाओं में रामचरित लिखने का, सामाजिक ही

जान पड़ता है। उन्होंने प्रत्येक वर्ग को अपनी रुचि के अनुकूल रामचरित सुलभ करना चाहा और इस प्रकार महिला-वर्ग के लिए उत्सव, संस्कारों के अवसर पर उपर्युक्त रामचरित से सम्बन्ध रखनेवाले गीत उन्होंने 'रामलला-नहछू', 'पार्वती मंगल', 'जानकी-मंगल' और 'गीतावली' में प्रदान किये, कवित्व-रसिकों के लिए 'कवितावली' बनायी, भक्तों और संन्यासियों के लिए 'विनय-पत्रिका', 'वैराग्य संदीपिनी'—जैसे ग्रन्थ हैं, लोक-नीति से प्रेम रखने वालों के लिए 'दोहावली' है और गम्भीर साहित्यिक एवं दार्शनिक रुचिवाले लोगों के लिए तथा जन-मानस का संस्कार करने के लिए तुलसीदास ने 'राम-चरित-मानस' का प्रणयन किया। इस प्रकार तुलसी की जागरूक चेतना ने समाज की आवश्यकता और अभिरुचि का ध्यान रखकर विविध ग्रन्थों की रचना की थी।

●

जीवनी और व्यक्तित्व

भारतीय महापुरुषों के जीवन-चरित के सम्बन्ध में प्रायः बड़ी गड़बड़ी देखने को मिलती है। उनके लौकिक जीवन की सूचना देने वाली निश्चित घटनाओं; तिथियों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। इसका अधिकांश कारण तो यह है कि ये महापुरुष अपने ऐहिक जीवन का परिचय अप्रकट ही रखना चाहते हैं। सन्त, महात्माओं और कवियों के सम्बन्ध में तो और भी कम सामग्री उपलब्ध है। वे स्वयं उसे शालीनता, मर्यादा और सिद्धांत के विपरीत समझते थे और कोई इस प्रकार के लौकिक जीवन के इतिहास की परम्परा भी नहीं मिलती। अतएव जीवनचरित के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं और बहुत सी मनगढ़न्त कथाएँ प्रचलित हो जाती हैं, जो उनके असाधारण महत्त्व की द्योतक होती हैं। जीवन की यथार्थ घटनाओं से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। कबीर, जायसी, सूर आदि की जीवनी आज भी अपूर्ण-ज्ञात है और यही दशा गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में भी है। उनके जन्म, माता-पिता, परिवार, गुरु आदि के सम्बन्ध में विभिन्न जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं, जिनका समावेश अनेक ग्रन्थों में विस्तार के साथ हुआ है। इस प्रकार के ग्रन्थ, जिनमें तुलसी के चरित-वर्णन का प्रयत्न किया गया है या तो पूर्ण प्रामाणिक नहीं या उनमें सम्पूर्ण जीवन-घटनाओं का विवरण नहीं। उनके जीवन-चरित का सबसे प्रामाणिक रूप अन्तस्साक्ष्य के आधार पर ही दिया जा सकता है, पर दुर्भाग्य-वश ये उल्लेख भी बहुत ही स्वल्प हैं।

अन्तस्साक्ष्य का आधार

परिवार

तुलसीदास के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले संकेत हमें उनके ग्रन्थों— 'रामचरितमानस', 'कवितावली', 'विनय-पत्रिका', 'बरवैरामायण', 'दोहावली' में मिलते हैं और ये संकेत उनकी आत्मकथा-सम्बन्धी झलक ही नहीं उपस्थित

करते, वरन् उनके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके आत्म-परिचयात्मक उल्लेखों में भी उनके माता, गुरु, वंश आदि के कथन: बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि के वर्णनों या संकेतों के रूप में हैं, जिन पर यहाँ हम विचार करेंगे। तुलसी-साहित्य के अन्तर्गत पारिवारिक व्यक्तियों में माता के अतिरिक्त और किसी के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। माता के नाम का उल्लेख नीचे लिखी पंक्ति में हुआ है :—

रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी
तुलसीदास हित हिय हुलसी सी।

इन पंक्तियों में आये हुलसी शब्द को माता के अतिरिक्त अन्य अर्थों में भी लोग ग्रहण करते हैं और उपर्युक्त चौपाई के ये अर्थ निकालते हैं कि राम की कथा राम को तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास के लिए उमड़े हुए हृदय के समान है अथवा तुलसीदास के लिए वह हृदय में उमड़ आयी, आदि। परन्तु ये अर्थ संगत बैठते नहीं। इसका तो सीधा अर्थ यही लगता है कि राम-कथा, तुलसी के लिए, माता हुलसी के हृदय के समान है। अनेक बहिर्साक्ष्यों में भी तुलसी की माता का नाम हुलसी मिलता है और यह जनश्रुति और परम्परा-पुष्ट भी है। रहीम के द्वारा जिसका उत्तरार्द्ध रचा गया कहा जाता है वह तुलसी का दोहा[1] भी, श्लेष के आधार पर उनकी माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध था, यही व्यक्त करता है।

नाम

दूसरा उल्लेख इनके अपने नाम का है। इनका बचपन का नाम तुलसी नहीं, वरन् रामबोला था, जो इस कारण दिया गया था कि ये राम-नाम अधिक लिया करते थे। कतिपय जीवनियों में तथा जनश्रुतियों में यह है कि तुलसी पाँच वर्ष के बालक के रूप में उत्पन्न हुए थे और जन्मते ही इन्होंने राम-नाम उच्चारण किया। इसी से इन्हें 'रामबोला' नाम मिला। इनकी कृतियों में इसी नाम का उल्लेख है :—

---

१. सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय॥

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम
काम यहै नाम द्वै हों कबहूँ कहत हौ।

—विनय पत्रिका

साहिब सुजान जिन स्वान हू को पच्छ कियो
राम बोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को।

—कवितावली

उपर्युक्त कथनों से व्यक्त होता है कि उनका नाम रामबोला था, पर वह बचपन का नाम था। उसके पश्चात इनका प्रसिद्ध नाम तुलसीदास हो गया। तुलसी, तो इनके अनेक छन्दों की पंक्तियों में लगा मिलता है; पर यह बाद में मिला, इसका भी संकेत बरवै रामायण और दोहावली के निम्नलिखित उद्धरणों में प्राप्त होता है :—

केह गिनती महँ गिनती जस बन घास।
राम जपत भे तुलसी तुलसीदास।

(बरवै)

नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसीदास॥

(दोहावली)

गुरु

उनके ग्रन्थों में माता तथा अपने निजी नामों के अतिरिक्त अन्य किसी परिवार के व्यक्ति का नाम नहीं। गुरु के नाम का भी उल्लेख नहीं। हाँ, गुरु-महिमा और कृपा-सम्बन्धी उल्लेख अवश्य हैं, जैसे :—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सूकरखेत।
... ...
मींज्यो गुरु पीठ अपनाई गहि बाँह बोलि,
सेवक सुखद सदा बिरद कहत हौ।
× × ×
बन्दौं गुरु पद कन्ज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।

दूसरी पंक्ति का गुरु, गुरु के अर्थ में नहीं।

अन्तिम पंक्ति से कुछ लोग इनके गुरु का नाम नरहरि, नरहरिदास या नरहर्यानन्द निकालते हैं और इन्हें रामानन्द की शिष्य-परम्परा में परिगणित करते हैं। नरहर्यानन्द तो दुर्गा के उपासक दूसरे व्यक्ति थे जैसा कि भक्तमाल में उल्लिखित है। पर गोपालदास (बाराहक्षेत्र वासी) के शिष्य नरहरिदास, रामानन्द की शिष्य-परम्परा और तुलसीदास के गुरु-रूप में भक्तों की सूची में मिलते हैं। डाक्टर ग्रियर्सन को दो सूचियाँ मिली थीं जिनका उल्लेख डॉ० श्यामसुन्दर दास ने अपनी रामचरित मानस की टीका में किया है और उसमें यह क्रम दिया हुआ है: राघवानन्द, रामानन्द, सुरसुरानन्द, राघवानन्द, गरीबानन्द, लक्ष्मीदास, गोपालदास, नरहरिदास, तुलसीदास। उन्होंने इस पर विश्वास इसलिये नहीं किया कि इसमें शठकोपाचार्य का नाम रामानुज के बाद दिया हुआ है, जबकि उसे रामानुज-सम्प्रदाय के ग्रन्थों के आधार पर पहले आना चाहिए। परन्तु इस क्रम-सम्बन्धी के एक अशुद्धि के कारण समस्त सूची पूर्णतया अप्रामाणिक नहीं सिद्ध की जा सकती है। गोपालदास यदि बाराह क्षेत्र के थे, तो नरहरिदास से तुलसी का कथा सुन लेना सूकरक्षेत्र में असंभव नहीं दीखता जैसा कि ऊपर लिखित दोहार्द्ध में प्रकट है और वे निज-गुरु थे। अतः कृपासिन्धु नररूप हरि से केवल राम का अर्थ लेना ही ठीक नहीं। वे मनुष्य-रूप-धारी नरहरि निज गुरु थे। कुछ लोग नरहरि का नाम भक्तमाल में रामानन्द की शिष्यपरम्परा में न आने के कारण, इनको उनकी परम्परा में नहीं मानना चाहते। नाभादास का भक्तमाल समस्त शिष्यों-प्रशिष्यों की कोई क्रमबद्ध सूची नहीं देता। अतः इस अन्तस्साक्ष्य को भी हमें, उनकी माता के नाम के समान, गुरु के नाम से सम्बन्ध रखने वाला समझना चाहिए।

जाति

अपनी जाति-पाँति के सम्बन्ध में तुलसी ने अपनी रचनाओं में कोई स्पष्ट संकेत नहीं किया। इनके कथनों में प्रायः सन्त-परम्परा के अनुकूल जातिबन्धन से मुक्त और स्वतन्त्र होने के उल्लेख मिलते हैं। जैसे :—

मेरे जाति पांति न चहौं काहू की जाति पांति
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
....
साह ही को गोत, गोत होत है गुलाम को।
....
धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारि न ओऊ।
... .
भलि भारत भूमि भले कुल जन्म, सरीर समाज भलो लहि कै।
....
दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जौ फल चारि कौ।।

इन पंक्तियों में प्रथम से तो उनकी जाति-पांतिहीनता का भाव ही प्रकट होता है, परन्तु अन्तिम पंक्तियों से उनके उत्तम कुल में उत्पन्न होने का संकेत मिलता है। ये स्वस्थ, सुन्दर शरीर के व्यक्ति थे। परन्तु कवितावली की एक पंक्ति से इनका मंगन-कुल का होना भी सिद्ध है, अतः यह कुल इन्हें ब्राह्मण होना ही सिद्ध करता है। सुकुल से कुछ लोग इन्हें शुक्ल होना बताते हैं। नन्ददास के प्रसंग में 'भक्तमाल' में, 'सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासो' पद आया है। इसके आधार पर 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में दिये विवरण से तुलसी और नन्ददास को भाई-भाई सिद्ध किया जाता है। इस प्रसंग पर हम आगे बहिर्साक्ष्य के भीतर विचार करेंगे। वहाँ यही निष्कर्ष निकलता है कि वे अच्छे कुल के सुन्दर शरीर वाले ब्राह्मण थे।

बाल्यावस्था

अंतस्साक्ष्य में इस बात का पूरा प्रमाण है कि इनकी बाल्यावस्था बड़ी संकट-ग्रस्त थी। उनके अनेक कथनों से यह स्पष्ट होता है कि इनके माता-पिता इनके जन्म के उपरान्त ही स्वर्गवासी हो गये थे। माता जन्मते ही और पिता भी, संभवतः अभुक्तमूल में जन्म होने के कारण इनका त्याग कर, थोड़े दिन बाद ही परलोकवासी हुए। इसके बाद इन्हें घर से निकाल दिया गया। इस बात की पुष्टि नीचे के उद्धरणों से होती है :—

मातु पिता जग जाइ तज्यौ, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई॥
(कवि०)

तनु तज्यौं कुटिल कीट ज्यौं तज्यौ मातु पिता हूँ।
(विनय-पत्रिका)

....

जायो कुल मंगन बधावनो बजायों सुनि
भयो परिताप टाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है
सुनत सिहात सोच विधिहू गनक को।
नाम राम रावरो सयानौ किधौं बावरो जो
करत गिरी तें गरु तृन ते तनक को।
(कवितावली)

कुछ लोगों ने उपयुक्त रेखांकित पंक्तियों से अर्थों को अन्य किसी प्रकार का लगाकर शंकाएँ खड़ी की हैं: जैसे कि माता-पिता ने जन्म देकर छोड़ दिया और वे मंगन कुल में उत्पन्न हुए, बधावा बजाने पर माता-पिता को पाप और दु:ख हुआ। इस पर फिर शंका उठाकर, कि पाप होने का क्या कारण है? कुछ लोग[1] तुलसी को अवैध सन्तान तक घोषित करने की सीमा पर पहुँचे हैं। परन्तु, उपर्युक्त पंक्तियों का सीधा अर्थ लगाने पर किसी भी प्रकार की शंका की गुंजाइश नहीं। ऊपर की प्रथम पंक्ति का अर्थ है: 'माता-पिता ने जन्म देकर संसार छोड़ दिया।' माता जन्मते ही मर गयी। इसकी पुष्टि 'तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूँ' से भी होती है। अत: यह स्पष्ट है कि माता-पिता इनके जन्मते ही मर गये थे और स्वार्थ के साथियों, परिवार के अन्य लोगों ने इन्हें दूर छोड़ दिया। इसी प्रकार हमें 'जायो कुल मंगन बधावनों बजायो सुनि

१. मानस मीमांसा, ले० रजनीकान्त शास्त्री।

भयो परिताप पाप जननी जनक को' का अर्थ यह लेना चाहिए कि माता-पिता के पाप और दु:ख स्वरूप में उत्पन्न हुआ, तो मंगन (भिखारियों) के कुल ने बधायी बजायी। अतः मंगन या माँगने वालों के कुल में इनका जन्म नहीं हुआ, वरन् इन्हें ऐसी परिस्थितियों में जन्मा देखकर मंगन-कुल को प्रसन्नता हुई कि इनके जन्म से इस कुल की वृद्धि हुई। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये बचपन से ही अपने जन्म-स्थान से दूर कर दिये गये थे और साधु-सन्तों के आश्रय में, बहुत दिनों तक भटकते और कष्ट सहते रहने पर, पहुँचे थे। सन्तों के प्रश्रय में जाने के पूर्व इन्हें द्वार-द्वार उदर-पोषण के लिए भीख माँगनी पड़ी।[1] और जाति-कुजाति सब के टुकड़े खाने पड़े।[2] इस दैन्य दशा का चित्रण 'विनय-पत्रिका' और 'कवितावली' की अनेक पंक्तियों में भरा पड़ा है।

युवावस्था

अन्तस्साक्ष्य में गार्हस्थ्य और युवावस्था के दाम्पत्य जीवन का कोई उल्लेख नहीं। यह अवस्था भी इनकी वैराग्यपूर्ण है और पर्यटन, सत्संग, राम-गुण-गान और ग्रंथ-रचना में व्यतीत हुई। चित्रकूट, काशी, सीतावट, अयोध्या आदि स्थानों में रहकर इन्होंने अपना वैराग्य और ईश्वर-प्रेम, प्रगाढ़ रूप से विकसित किया।

प्रकृति और स्वभाव

इस समय के अनेक कथन इनके स्वभाव को स्पष्ट करने वाले हैं। तुलसी का विरक्त और फक्कड़ जीवन उनके सांसारिक सम्बन्ध तो विछिन्न हो ही चुके थे, अतः वे पूर्ण त्यागी और निर्द्वन्द्व थे, जैसा उनके अनेक उल्लेखों से प्रकट है :—

१. द्वार-द्वार दीनता कही, काढ़ि रद परि पाहू।

(विनय-पत्रिका)

२. जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागि बस,
खाये टूक, सबके विदित बात दुनी सो।

(कवितावली)

मेरी जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति
मेरे कोऊ काम न हौ काहू के काम को।
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच सोच कहा
का काहू के द्वार परो जो हौं सों हौं राम को।

× ×

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो,
लेबो को एक न दैबो को दोऊ।।

तुलसी की निर्द्वन्द्वता और निर्भीकता के कारण, राम की अनन्य भक्ति, दृढ़ श्रद्धा और अटल विश्वास थे, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने देवताओं तक की आलोचना की है। वे जानते हैं कि उन्हें जो कुछ गौरव और सम्मान प्राप्त हुआ है, वह सब राम के ही कारण है। यह भाव उनके अनेक कथनों-द्वार स्पष्ट है :—

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाँय।
ते तुलसी तब राम बिन, ये अब राम सहाय।।

(दोहावली)

तुलसी बनी है राम रावरे बनाये न तु,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को।

× × ×

हौं तो सदा खर को असवार तिहारोई नाँव गयन्द चढ़ायौ।

× × ×

कुमया कछु हानि न औरन की जौ पै जानकी नाथ मया करिहै।

इस प्रकार तुलसीदास ने राम-नाम का आश्रय प्राप्त कर समस्त परिणामों के प्रति उदासीन रहकर अपना जीवन व्यतीत किया।

तुलसी की प्रकृति की नम्रता तो प्रसिद्ध है ही। इतने बड़े पंडित और कवि होते हुए भी उन्हें अपने को कवि, पंडित आदि कुछ भी कहने और कहवाने में संकोच है। इतना ही नहीं, वे अपने को सबसे छोटा समझते थे और समस्त सृष्टि को सीता-राममय समझ कर प्रणाम करते थे। 'सीय-राममय सब जग

जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥' गांधीजी की परिभाषा के अनुसार कि महात्मा वह है, जो अपने को सबसे छोटा समझता है, तुलसी बहुत बड़े महात्मा थे. इसमें सन्देह नहीं । इतना होते हुए भी उनकी दृष्टि पैनी थी और उनके भीतर न्याय और सत्य की तीव्र चेतना जगमगाती थी । अतएव वे अनौचित्य, आडम्बर, अन्धविश्वास को सहन नहीं कर सकते थे और ऐसे प्रसंगों में वे तीखे शब्दों का व्यवहार करते थे, जैसे :—

गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हू को
आपने चना चबाई हाथ चाटियतु हैं ।

× × ×

लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब पाय ।
कक कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाय ॥

आदि अनेक कथन उनकी सामाजिक मूढ़ता की आलोचना के नमूना है, जो उनकी जागरूक चेतना को चारों ओर प्रसारित करते है । भ्रमण, अध्ययन और सत्संग के द्वारा तुलसी ने जो विशाल अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, वह उनकी रचनाओं में प्रकट हुआ है ।

वृद्धावस्था और अवसान-काल

युवावस्था, बाल्यावस्था के समान कष्टकर नहीं थी, पर वृद्धावस्था में इन्हें भयङ्कर बाहु-पीड़ा का सामना करना पड़ा था, जिसका उल्लेख 'कवितावली' और 'हनुमान बाहुक' में हुआ है । पीड़ा के निवारण के लिए इन्होंने शंकर, राम, हनुमान आदि की प्रार्थना की थी, परन्तु हनुमान बाहुक के ४४ छन्द तो पीड़ा-निवारणार्थ ही लिखे गए थे । वह पीड़ा इनकी बाहु तक ही सीमित न थी, वरन् सारे शरीर में व्याप्त हो गयी थी :—

पाँव पीर; पेट पीर, बाहु पीर; मुँह पीर ।
जरजर सकल सरीर पीर मई है ॥

परन्तु इस भयङ्कर पीड़ा के समय भी उनकी राम के प्रति अनन्य भक्ति में लेश-मात्र भी अन्तर न हुआ था कष्ट-सहिष्णु विनम्र और दृढ़ विश्वासी, सच्चे भक्त

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने जीवन-काल में ही स्पृहणीय यश प्राप्त कर लिया था। उनकी मृत्यु का संकेत करने वाला एक प्रसिद्ध दोहा है :—

संवत सोलह सै असी असी गङ्ग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर॥

परन्तु इनके ग्रन्थों में तिथि का कोई उल्लेख नहीं। कुछ पंक्तियाँ अवश्य 'कवितावली' और 'दोहावली' में हैं, जो उनके अवसान-काल की द्योतक हैं, जैसे :—

पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है।

× × ×

तथा राम नाम जस बरनि कै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये अबही तुलसी सोन॥

इससे संकेत यह मिलता है कि उनकी मृत्यु राम का यश वर्णन करते ही हुई और अन्त समय तक उनकी वाणी से कविता का प्रवाह प्रस्रवित होता रहा। अपनी आस्था के अनुसार मंगल और आनन्ददायी शुभ शकुनों के साथ उन्होंने इह-लोक-लीला का संवरण किया।

बहिस्साक्ष्य

ऊपर लिखी हुई जीवनी प्रामाणिक है, क्योंकि वह प्रायः स्वकथित जीवनी है, परन्तु तुलसीदास के जीवन-चरित को स्पष्ट करने वाले बहिस्साक्ष्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इनमें बहुतेरे परस्पर विरोधी और अन्तस्साक्ष्य के विपरीत पड़ने के कारण अमान्य हैं। बहुत से विद्वानों ने किसी एक पक्ष का खंडन कर दूसरे पक्ष में अपना मत दिया है, परन्तु मान्य मत वही हो सकता है जिसमें अन्तस्साक्ष्य का विरोध न हो और बहिस्साक्ष्य भी पक्ष में हो सके या उसके विपरीत धारणा तर्कसंगत न हो। इस दृष्टि से हम उनकी जीवनी के उन अंशों की बहिस्साक्ष्य के आधार पर खोज करेंगे, जो अन्तस्साक्ष्य द्वारा निर्दिष्ट नहीं है। तुलसी के जीवन-चरित का उल्लेख करने वाली प्रमुख सामग्री और ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

१. नाभादास का भक्तमाल
२. प्रियदास की टीका
३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
४. वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित और मूल गोसाईं चरित
५. बाबा रघुबरदास कृत तुलसी-चरित
६. तुलसी साहब हाथरस वाले का आत्मचरित और घट रामायण
७. काशी की सामग्री
८. अयोध्या की सामग्री
९. राजापुर की सामग्री
१०. सोरों की सामग्री

इन पर हम एक-एक करके विचार करेंगे।

भक्तमाल

इनमें नाभादास का भक्तमाल सबसे अधिक प्रामाणिक है। इसमें तुलसीदास जी को भक्तमाल का सुमेरु कहा गया है। परन्तु, इस ग्रन्थ के अन्तर्गत तुलसी के सम्बन्ध में केवल एक छप्पय मिलता है, जो इस प्रकार है:—

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन।।
अब भक्तन सुखदेन बहुरि लीला विस्तारी।
राम चरन रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।।
ससार अपार के पार को सुगम रीति नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।।[1]

इसी प्रकार 'भविष्य पुराण' में भी उल्लेख है। नाभादास के छप्पय में गोस्वामीजी के महत्व का वर्णन है। उनकी अटूट राम-भक्ति और बाल्मीकि के अवतार होने का कथन है, पर उनके जीवन-चरित्र के सम्बद्ध में कोई उल्लेख नहीं। प्रियादास के भक्तमाल की टीका सं० १६६६ में लिखी गयी थी। इसमें

१. भक्तमाल, पृष्ठ ७६२, टीकाकार रूपकला जी।

गोस्वामी जी के अलौकिक कृत्यों का ११ छन्दों में वर्णन है। इसमें तुलसी के द्वारा किये गये चमत्कारों के संकेत हैं, जैसे वाटिका में हनुमद्दर्शन, ब्रह्महत्या-निवारण, दिल्लीपति बादशाह जहाँगीर से संघर्ष आदि। ये तत्कालीन किंवदन्तियों का रूप स्पष्ट करते हैं। यह टीका जनश्रुति का लिखित रूप है, पर यह जनश्रुति बहुत पुरानी होने से तुलसीदास के माहात्म्य को स्पष्ट करती है। एफ० एस० ग्राउज़ ने अपने रामचरित मानस के अंग्रजी अनुवाद की भूमिका में इसके तथा वेणीमाधवदास के गोसाईं चरित के आधार पर तुलसीदास की जीवनी दी है। अलौकिक कृत्यों का ही विवरण होने से हम इसे ऐतिहासिक महत्त्व नहीं प्रदान कर सकते।

वार्ता

"दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में नन्ददास की वार्ता के प्रसंग में तुलसीदास का उल्लेख किया गया है। इन प्रसंगों और वतरणों से तुलसीदास-जी और नन्ददास जी का सम्बन्ध निश्चित होता है। तुलसीदासजी, वार्ता के अनुसार, नन्ददास के बड़े भाई थे। वे राम के अनन्य भक्त थे और काशी में रहते थे। नन्ददास से मिलने ब्रज गये थे और वहाँ कृष्ण की मूर्ति को, उसके रामरूप धारण करने पर ही प्रणाम किया। नन्ददास पूरब में रामपुर के निवासी थे, यह भक्तमाल से भी सिद्ध है। नन्ददास के छोटे भाई चन्द्रदास थे। परन्तु भक्तमाल में तुलसी और नन्ददास का कोई सम्बन्ध प्रकट नहीं है। यदि वार्ता के वर्णन को माना जाय तो तुलसी अधिक लोकाभिमुख प्रतीत होते हैं, क्योंकि काशीवास में नन्ददास उनके संरक्षण में रहते थे, यह उसमें स्पष्ट है। तुलसीदास के कथनों और अन्तस्साक्ष्य से उनके किसी पारिवारिक सम्बन्ध में बँधे होने का संकेत नहीं मिलता। अतः यदि यह सत्य है, तो वे कोई दूसरे तुलसीदास हो सकते हैं।

वेणीमाधवदास कृत 'गोसाईं चरित'

इस चरित्र का उल्लेख सं० १९३४ में लिखे गये 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रन्थ में मिलता है, जिसमें तुलसीदासजी के सम्बन्ध में यह कथन है कि इनके

जीवन-चरित्र की यह पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पस्का ग्रामवासी ने, जो इनके साथ-साथ रहे विस्तारपूर्वक लिखी। उनके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। उसी में वेणीमाधवदास का समय सं० १६५५ और १६६६ के बीच माना गया है। यह 'गोसाईं चरित' नामक पुस्तक बहुत अधिक खोज करने पर भी उपलब्ध नहीं हुई है। परन्तु, इसके समान ही एक और पुस्तक इसी नाम से, नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित रामचरित मानस की रामचरणदास कृत टीका के साथ प्रकाशित हुई है। यह विस्तृत पद्यबद्ध चरित है; मानस के अयोध्याकांड के बराबर और इसमें सेंगर-द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ भी मिलती हैं। इसका रचनाकाल १८१० वि० के लगभग जान पड़ता है। इसमें अनेक तिथियाँ भी दी गयी हैं और आदि से अन्त तक बहुत ही चमत्कारपूर्ण बातें, जैसे मुर्दे को जिलाना, स्त्री को पुरुष बनाना, पत्थर के नन्दी को घास खिलाना आदि का वर्णन है। अतः इन बातों के आधार पर इसको भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

मूल गोसाईं चरित

सं० १९८२ में प्रकाशित एक ग्रन्थ 'वेणीमाधवदास कृत मूल गोसाईं चरित' कहकर प्रसिद्ध किया गया है। इसकी और गोसाईं चरित की शैली एक ही है, साथ-ही साथ बहुत सी घटनाएँ भी एक हैं। अन्तर यह है कि कतिपय प्रसंग जो मूल में दिये गये हैं, वे गोसाईं चरित में नहीं मिलते। मूल को डॉ० श्यामसुन्दर दास, डॉ बड़थ्वाल आदि विद्वान् प्रामाणिक मानते हैं। परन्तु बहुत से विद्वान् जैसे मिश्रबन्धु, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि इसे प्रामाणिक नहीं मानते। इसकी प्रामाणिकता को असिद्ध करने के लिए नीचे लिखी प्रकार की बातें कही जाती हैं :—

१. पहली तो तिथि सम्बन्धी बातें हैं। जिस प्रकार तिथियों का विस्तृत विवरण और उल्लेख इसमें हुआ है, वैसी परम्परा नहीं मिलती। साथ ही सं० १५५४ में जन्म और १६८० में निधन मानने से तुलसी की १२६ वर्ष की दीर्घायु हो जाती है और इसके कारण रामचरित मानस की रचना ७७ वर्ष की अवस्था

में प्रारम्भ होती है। केशव की रामचन्द्रिका का इसमें दिया रचनाकाल, वास्तविक रचनाकाल से मेल नहीं खाता।

२ दूसरी बातें; घटनाओं-सम्बन्धी हैं, जैसे हितहरि वंश की मृत्यु, सूरदास का मिलना और गोकुलनाथ का पत्र लाना उस समय जब उनकी अवस्था ४ वर्ष की निकलती है तथा रामचन्द्रिका की रचना और केशव की भेंट आदि के प्रसंग भी इसी प्रकार त्रुटि-पूर्ण हैं।

३. ऐतिहासिक तथ्यों का जो इसमें उल्लेख है, वह इतिहास से प्रामाणिक सिद्ध नहीं हो पाता।

४. अलौकिक घटनाओं का वर्णन जैसे जन्मते ही रामनाम का उच्चारण करना और बत्तीसों दाँत होना, विधवा स्त्री के पति को जिलाना, पत्थर के नन्दी का हत्यारे के हाथ से प्रसाद पाना और कृष्ण का राम बन जाना आदि अविश्वसनीय हैं।

ऐसे[1] ही कुछ तिथियाँ, जो इसमें दी हुई हैं, वे ज्योतिष की गणना के अनुसार अशुद्ध रहती हैं।

ऊपर लिखी बातों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे अप्रामाणिक ठहराया है। ध्यान से देखने पर ऐसा लगता है, जैसे इसके भीतर प्राप्त सत्य को अंगीकार करना नहीं, वरन् उसे अप्रामाणिक सिद्ध करना ही कुछ लोगों का उद्देश्य है। तिथियों के सम्बन्ध में गड़बड़ी और अशुद्धि हो सकती है। परन्तु यदि दो तिथियाँ गलत निकल आवें तो पूरी घटनाएँ घड़बड़ मान लेने का कोई कारण नहीं। तब न तो छापाखाने थे और न इस प्रकार की सुविधाएँ। गणना में भी स्थानीय अन्तर हो सकते थे। अतः यह गम्भीर कारण अप्रामाणिक होने का नहीं कहा जा सकता। जो चमत्कारपूर्ण अलौकिक कृत्यों का उल्लेख है वह तो उसकी आधुनिकता नहीं, प्राचीनता ही सिद्ध करता है क्योंकि तब इस प्रकार की बातों पर विश्वास था, अब नहीं। यदि लिखने वाला आधुनिक युग का कोई व्यक्ति

१. विशेष विवरण के लिए देखिए डॉ० माताप्रसाद गुप्त कृत तुलसीदास, पृष्ठ ४०

होता तो निश्चय ही ऐसी बातों को एकदम हटा देता। फिर इस प्रकार के उल्लेख, जनश्रुति, प्रियादास की टीका आदि से भी पुष्ट होते हैं। अतः यह कृति निश्चय ही किसी आधुनिक युग के व्यक्ति की नहीं। साथ ही इसमें आयी बातें अन्य आधारों-द्वारा भी सिद्ध हो जाती हैं। तिथि-सम्बन्धी उल्लेख अन्य ग्रन्थों में नहीं है। अतएव हमें जो कुछ अशुद्ध निकलता है उसको छाँट कर अन्य बातों को मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर तुलसीदास की जीवनी की प्रमुख बातें ये हैं :—तुलसीदास का जन्म सं० १५५४ वि० में श्रावण शुक्ला सप्तमी को राजापुर में हुआ था।

पन्द्रह से चौवन विषे कालिन्दी के तीर
श्रावण सुकला सप्तमी तुलसी धरै सरीर ॥

इनके पिता राजापुर के राजगुरु थे। इनकी माता का नाम हुलसी था। जन्म के समय ये रोये नहीं, वरन् राम-राम उच्चारण किया, जिससे इनका नाम रामबोला पड़ गया। उनके बत्तीसों दाँत थे और ये पाँच वर्ष के बालक-जैसे उत्पन्न हुए थे। जन्म के तीन दिन बाद इनकी माता का देहान्त हो गया। माता ने पुत्र की रक्षा का भार अपनी दासी चुनियाँ को सौंप दिया था, अतः हुलसी की मृत्यु के बाद वह रामबोला को अपनी ससुराल हरिपुर ले गयी और वहाँ वह साँप के काट लेने से स्वयं ही मर गयी। वहाँ से राजापुर पिता के पास संदेशा आया, पर उन्होंने बालक को अमंगलकारी जानकर वापिस बुलाया ही नहीं। पाँच वर्ष का बालक रामबोला द्वार-द्वार भीख माँगने लगा। अनन्तनन्द के शिष्य नरहर्यानन्द ने सब संस्कार करके शूकर क्षेत्र में इन्हें राम की कथा सुनायी। उन्होंने रामबोला का तुलसी नाम रखा। पाँच वर्ष के बाद नरहरि इन्हें लेकर काशी आये और वहाँ शेष सनातन से मिले। शेष सनातन तुलसी की प्रतिभा पर चकित रह गये और उनके संरक्षण में उन्होंने इतिहास, पुराण और काव्यकला सभी कुछ पढ़ डाला। शेष सनातन की मृत्यु के उपरान्त तुलसी राजापुर आये और वहीं रामकथा कह कर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

सं० १५८३ में तारपिता गाँव के एक ब्राह्मण ने तुलसी का विवाह अपनी पुत्री से कर दिया। पाँच वर्ष वैवाहिक जीवन व्यतीत करने बाद उनकी स्त्री एक बार चुपचाप मैके चली गयी। ये स्वयं उसके पीछे ससुराल गये और उसकी चेतावनी पर वैराग्य ग्रहण किया। इस दुःख में सं० १५८९ में उनकी मृत्यु हो गयी। तुलसी ने घर से निकल कर १५ वर्ष तक तीर्थयात्रा और भ्रमण कर अन्त में चित्रकूट में अपना निवास-स्थान बनाया। वहाँ हनुमान के द्वारा राम-दर्शन हुए। यहीं हितहरिवंश का पत्र मिला और सूरदास भी मिलने आये और इन्हें सं० १६१६ में अपना सूरसागर दिखाया। मीराबाई का पत्र मिला और उसका तुलसी ने उत्तर दिया। संवत् १६२८ में राम गीतावली और कृष्ण गीतावली को संग्रहित किया। इसके बाद ये काशी चले गये। रास्ते में वारिपुर, दिगपुर, स्थानों पर रुके और कुछ कवित्तों की रचना की। काशी में शिव जी ने दर्शन देकर इन्हें रामकथा लिखने के लिये प्रेरित किया जिसके फल-स्वरूप सं० १६३१ में अयोध्या आकर इन्होंने रामचरित मानस की रचना प्रारम्भ की।

रामचरित मानस की ख्याति बढ़ गयी, फलतः काशी के पंडितों ने उसे द्वेषवश चुराने का प्रयत्न किया और तुलसी ने वह प्रति काशी के जमींदार टोडर के यहाँ सुरक्षित रखवायी। काशी के पंडितों के द्वारा पीड़ित होने पर सं० १६३३ से ४० तक इन्होंने विनय-पत्रिका लिखी, इसके बाद इन्होंने मिथिला यात्रा की। इसी समय के लगभग रामलला-नहछू, पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल की रचना की। सं० १६४० में दोहावली का संग्रह किया। सं० १६४१ में बालमीकि रामायण की प्रतिलिपि तैयार की। सं० १६४२ में केशव-दास तुलसी से मिले और इनसे प्रेरित होकर रामचन्द्रिका की रचना की। अपनी यात्राओं में ये नाभादास, नन्ददास, गोपीनाथ, मलूकदास आदि से मिले। उन्होंने अनेक चमत्कार भी दिखाये। सं० १६७० में जहाँगीर दर्शनों के लिए आया और तुलसी को धन देना चाहा, पर इन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस बीच में इन्होंने अन्य ग्रन्थों की रचना की। संवत् १६८० में श्रावण ताज शनि-वार को गंगा के किनारे असी घाट पर तुलसीदास ने अपना शरीर छोड़ा।

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण स्यामा तीज सनि, तुलसी तजे शरीर।।

उपर्युक्त विवरण इतना पूर्ण है और तुलसी के सम्बन्ध में विश्वस्त-रूप से ज्ञात लगभग समस्त बातों को इस प्रकार अपने में समेट लेता है कि तिथि आदि छोड़कर अन्य अधिकांश घटनाओं को मान लेने में कोई हानि नहीं। हितहरिवंश, सूरदास, केशवदास आदि के सम्बन्ध में जो बातें दी गयी हैं, वे अपने चरित्र-नायक के महत्त्व को ऊपर उठाने के उद्देश्य से इस रूप में हैं। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि में जो बातें हैं वे कृष्णोपासक सम्प्रदाय के प्रचारार्थ हैं। अतः तुलसीदास के रामोपासक होने से, यदि उनके महत्त्व का स्पष्टीकरण उनमें नहीं हुआ, तो उसका कारण समझा जा सकता है। इस चरित्र में जितने तथ्यों का उल्लेख है, उतनों का किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं, अतः सहसा अविश्वसनीय कह देना ठीक नहीं। हमें उस पर फिर विचार करना चाहिए और जो बातें अशुद्ध या असत्य निकलती जायें उन्हें ही अस्वीकार करना चाहिए।

तुलसी चरित

यह चरित प्रकाशित नहीं हुआ है। सं० १९६९ के ज्येष्ठ मास में प्रकाशित 'मर्यादा' पत्रिका के एक लेख में ही उसका उल्लेख है। इसे एक बड़ा वृहद ग्रन्थ कहा गया है। इसके अवध, काशी, नर्मदा और मथुरा चार खंड हैं और इसमें १३३९६२ छन्द हैं। इसका चरित किंवदन्तियों और अन्तस्साक्ष्य से मेल नहीं खाता। इसमें न तो बाल्यावस्था कष्टकारी सिद्ध होती है और न वैराग्य-भाव का कोई कारण प्रकट होता है। तीन विवाह जिसके हों छः छः हजार मुद्राएँ जिसे दहेज में मिलें, उसके भीतर यह दैन्य नहीं हो सकता, जो तुलसी से भीतर परिव्याप्त है। यह न तो प्रकाशित ही हुआ है और न विद्वानों द्वारा मान्य ही है, अतः अधिक विवरण व्यर्थ है।

घट रामायण

हाथरस के तुलसी साहेब का समय सं० १८२० से १९०० तक है। उन्होंने

अपने को गोस्वामी तुलसीदास का अवतार मानकर अपने ग्रन्थ 'घट रामायण' में अपने पूर्व जन्म की आत्मकथा लिखी हैं। यह बहुत संक्षिप्त है और इसमें चमत्कार-पूर्ण प्रसंगों का अभाव है। इसमें तिथियों तथा अन्य व्यक्तियों के उल्लेख प्रामाणिक और पुष्ट नहीं कहे जा सकते। साथ ही साथ यह बात भी विश्वसनीय नहीं हो सकती कि वे ही पूर्व जन्म में तुलसीदास थे और उन्हें अपने पूर्ववर्ती जीवन की सभी बातें याद थीं। हम केवल यही कह सकते हैं कि इसमें प्राप्त सामग्री तत्कालीन जनश्रुति का एक रूप है और इसका इतना ही महत्त्व है। मोटे रूप से इसमें आयी घटनाएँ इस प्रकार हैं—तुलसी का जन्म सं० १५८९ भाद्रपद शुक्ला ११ मंगलवार को जमुना किनारे राजापुर में हुआ था। सं० १६१४ में उन्हें ज्ञानोदय हुआ। वे काशी गये। सं० १६१८ में उन्होंने घट रामायण की रचना की, पर उसका बड़ा विरोध हुआ। उसको छिपा कर सं० १६३१ में उन्होंने रामचरित मानस की रचना की। इसमें उल्लिखित जन्म-सम्बन्धी तिथि ही शुद्ध है अन्य नहीं और यह एक संयोग की ही बात है। इस विवरण को कोई भी ऐतिहासिक महत्व देना उचित नहीं।

काशी की सामग्री

इस सामग्री के अन्तर्गत एक पुरानी इमारत है, जिसमें हनुमान जी की मूर्ति है तथा लकड़ी का एक टुकड़ा है, जो उस नाव का भाग बताया जाता है जिस पर गोसाईं जी गंगा पार जाया करते थे। इसके अतिरिक्त एक जोड़ी खड़ाऊँ का एक चित्र है, जो नया है। प्रह्लाद घाट पर गंगाराम के उत्तराधिकारियों के पास एक पुराना चित्र है, जिसे जहाँगीर का बनवाया हुआ कहा जाता है। असी घाट के स्थान पर गोस्वामीजी के उत्तराधिकारियों के कुछ कागजात हैं। ये सनदें दानपत्र प्रामाणिक हैं, इनके अतिरिक्त तुलसीदास की लिखी हुई बालमीकि रामायण के उत्तरकांड की हस्तलिखित प्रति सं० १६४१ की लिखी है और एक टोडर के उत्तराधिकारियों के बीच हुआ पंचायतनामा है। यह सामग्री संग्रहणीय है, परन्तु इनसे उनकी जीवनी पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता। रामायण की प्रतिलिपि, मूलगोसाईं चरित के तत्सम्बन्धी विवरण को पुष्ट करती है।

अयोध्या की सामग्री

इसमें एक 'तुलसी चौरा' है। कहते हैं गोस्वामी जी ने यहीं मानस की रचना की थी। दूसरी महत्त्व की वस्तु मानस के बालकांड की एक प्रति है, जो यहाँ 'श्रवण कुंज' नामक मंदिर में है। कहा जाता है कि इसमें कई स्थानों पर गोस्वामी के हाथ के संशोधन हैं। इस प्रति का लिपिकाल सं० १६६१ बैसाख सुदी ६ बुधवार दिया हुआ है। डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि यह तिथि गणना से शुद्ध नहीं निकलती। साथ ही ६१ का ६ ऐसा है जो ९ के ऊपर लिखा जान पड़ता है। अतः लिपिकाल सं० १६९१ मानना चाहिए जो गणना से भी शुद्ध उतरता है। जो कुछ भी हो, इससे उनकी जीवनी पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता।

राजापुर की सामग्री

राजापुर में जमुना के किनारे पहले एक कच्चा मकान था, जो जमुना की बाढ़ में नष्ट हो गया। अब उसका चित्रमात्र शेष है। अब एक पक्का मकान वहाँ से हटकर बनाया गया है। इसमें एक काले पत्थर की मूर्ति है, जो जमुना की रेत में पड़ी मिली थी और गोस्वामी जी की मूर्ति बतायी जाती है। एक मानस की अयोध्याकांड की प्रति भी है, जो गोस्वामी जी के हाथ की लिखी कही जाती है। राजापुर में प्रचलित कुछ रीतिरिवाज भी हैं, जो तुलसीदास के समय से प्रचलित माने जाते हैं। यहाँ पर गोस्वामीजी के शिष्य उपाध्यायों के पास कुछ सनदें हैं, जो यह सिद्ध करती हैं कि तुलसी का सम्बन्ध यहाँ से था और वहाँ के शासक इन्हें तुलसी का उत्तराधिकारी मानते आये हैं। बाँदा गजेटियर में उल्लेख मिलता है कि राजापुर की स्थापना गोस्वामी तुलसीदास ने अकबर के शासन-काल में की थी, जो सोरों जिला एटा से आये थे। इससे स्पष्ट है कि गजेटियर के समय तक, उधर के लोगों में सोरों, गोस्वामीजी की जन्मभूमि प्रसिद्ध थी। राजापुर को तुलसी ने बसाया था, यह मानना कठिन है, क्योंकि यदि यह मानें तो तुलसी कहीं बाहर से आये थे और इतने प्रसिद्ध थे कि वे एक शहर बसा सकते थे, यह भी मानना पड़ता है। इसके साथ ही तुलसी यदि इसे बसाते तो

राजापुर नाम कभी न रखते, वरन् वे राम से सम्बन्धित कोई नाम ही रखते। अतः गजेटियर में आयी जनश्रुति का रूप विश्वसनीय नहीं ठहरता। राजापुर से तुलसी का सम्बन्ध था इसमें सन्देह नहीं। वहाँ उनका शिष्य-परिवार है, अतः जन्मभूमि होने से यह दूर है।

सोरों की सामग्री

सोरों की सामग्री के भीतर 'रामचरित मानस' के बाल और अरण्यकांडों की प्रतियाँ, शूकरक्षेत्र-महात्म्य भाषा (कृष्णदास रचित), मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत, रत्नावली लघु दोहा संग्रह, दोहा रत्नावली आदि हैं। इस सामग्री की प्रामाणिकता और प्राचीनता में सन्देह है। सोरों की सामग्री के आधार पर तुलसी के जीवन-चरित की निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं:—

तुलसीदास के पूर्वज रामपुर के रहने वाले थे। सोरों जिला एटा में आकर बसे थे। इनके पिता का नाम आत्माराम था। ये सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण थे। इनके चचेरे भाई नन्ददास और चन्द्रदास थे। माता-पिता के देहावसान के बाद सोरों में ही रहते थे और वहीं नृसिंह चौधरी की पाठशाला में पढ़ा करते थे। बचपन का नाम रामबोला था। तुलसी का विवाह सं० १५८९ में दीनबंधु पाठक की विदुषी कन्या रत्नावली से हुआ। इनका दाम्पत्य जीवन सुखमय था। पुराणादि की कथा बाँचकर जीविकोपार्जन करते थे। उनके तारापति नामक पुत्र भी हुआ जो थोड़े ही दिनों तक जीवित रहा। रत्नावली के एक बार मायके भाई को राखी बाँधने के लिए जाने पर तुलसी ने सूनेपन का अनुभव किया और रात में गंगा के बहते प्रवाह को पार कर रत्नावली के पास गये। रत्नावली को यह जान कर बड़ा क्षोभ हुआ और उसने इन्हें चेतावनी दी; जिससे इनका आध्यात्मिक संस्कार जाग उठा और ईश्वर के प्रेम की ओर अभिमुख हो ये घर से निकल गये। इसके उपरान्त के तुलसी के जीवन का विवरण सोरों की सामग्री में उपलब्ध नहीं है।

इसके आधार पर तुलसी और नन्ददास चचेरे भाई सिद्ध होते हैं। जो 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' का भी साक्ष्य है। भक्तमाल में नन्ददास पूरब के

रामपुर गाँव-निवासी प्रकट होते हैं। यदि सोरों के पास का रामपुर है, तो उसे पूरब नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह पूर्व दिशा में होते हुए भी निकट है। इसके अतिरिक्त जो बालपन का गोस्वामी तुलसीदास का वर्णन इस सामग्री के आधार पर मिलता है, वह अन्तस्साक्ष्य के सर्वथा विपरीत पड़ता है। इसमें ये अपने भाई के साथ पाठशाला में पढ़ते रहते हैं, पर अन्तस्साक्ष्य उनका द्वार-द्वार भटकने और चार चनों के लिए ललकने वाला रूप प्रकट करता है, अतः यह प्रामाणिक नहीं है। इस सामग्री में यह उल्लेख संदिग्ध है कि ये तुलसी वही हैं, जो 'रामचरित मानस' के लेखक प्रसिद्ध तुलसीदास हैं। हो सकता है कि सोरों में पढ़ने वाले तुलसी कोई दूसरे हों, जिनका बचपन कष्टमय न बीता हो और ये तुलसी दूसरे।

अब शंका रह जाती है शूकरक्षेत्र के सम्बन्ध में। सूकरखेत तुलसी के जन्म-स्थान के समीप होना चाहिए, वहाँ उनका निज गुरु होना चाहिए और उसे राम नाम का उपदेशक भी होना चाहिए, जैसा कि विनय-पत्रिका की पंक्ति "गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरो सो" से प्रकट होता है। शूकर-क्षेत्र नाम के दो स्थान बताये जाते हैं:—एक तो प्रसिद्ध सोरों है और दूसरा गोंडा जिला में सरयू के किनारे तीर्थस्थान जिसे पं० रामबहोरी शुक्ल ने प्रस्तुत किया था। यदि गोस्वामी तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर माना जाय, तो तुलसी गुरु की खोज में राम-नाम सुनने राजापुर से उस अप्रसिद्ध सूकरखेत क्यों जाते? अधिक प्रसिद्ध स्थान, प्रयाग, काशी और चित्रकूट थे, जहाँ वे बड़ी सुगमता से जा सकते थे। शास्त्रों में प्रामाणिक गोंडा वाला शूकरक्षेत्र नहीं। एक तो सोरों हैं, दूसरा बिहार में है, जो बाराह क्षेत्र माना जाता है। राजापुर से सोरों जाना भी कुछ तुक का नहीं दीखता, क्योंकि तुलसी बहुत छोटे थे और निपट असहाय भी थे। साथ ही उतनी दूर निज गुरु भी कैसे हो सकते थे।

जीवनी की रूपरेखा

अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि जन्मभूमि न तो राजापुर ही है और न सोरों ही, बरन् सोरों या शूकरक्षेत्र के पास कोई स्थान गोस्वामीजी की जन्म-

भूमि हो सकती है, जहाँ ये उत्पन्न हुए। जन्मते ही इनकी माता नहीं रही और पिता ने भी शीघ्र ही संसार त्याग दिया और इन्हें किसी ने आश्रय नहीं दिया। ये भटकते, माँगते खाते, सूकरखेत (सोरों) पहुँचे। वहाँ नरहरिदास को गुरु रूप में स्वीकार कर उनसे राम-कथा सुनी। उसके उपरांत सत्सङ्ग में ये चित्र-कूट गये होंगे और उसके पास ही राजापुर में विवाहोपरान्त रहने लगे। इनका स्त्री के उपदेश से वैराग्य प्राप्त होने के समय का वासस्थान राजापुर ही है। वहाँ से इन्होंने काशी, अयोध्या और चित्रकूट आदि स्थानों में घूमते रहकर ज्ञानार्जन और भक्ति-साधना की, साथ ही काव्य-रचना की। इनकी माता का नाम हुलसी और गुरु का नाम नरहरि था। रामचरित की रचना संवत् १६३१ में अयोध्या में हुई। सं० १६४३ में पार्वती-मंगल की रचना हुई। वृद्धावस्था में इन्हें भयंकर बाहु-पीड़ा का कष्ट सहना पड़ा। काशी में इन्होंने महामारी[1] का हृदय-विदारक दृश्य भी देखा और क्षुब्ध होकर हनुमान, शंकर और राम से उद्धार की प्रार्थना की। पर अन्तिम समय सन्तोष और आस्था के साथ इन्होंने इहलोक लीला समाप्त की।

जन्म-तिथि

जन्म-तिथि के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। शिवसिंह सरोज में इनकी जन्मतिथि सं० १५८३ के लगभग मानी गयी है, जिससे स्पष्ट है कि उसका कोई आधार नहीं। विल्सन ने भी अपने ग्रंथ 'रिलिजस सेक्ट्स ऑफ दि हिन्दूज' में इसी प्रकार सं० १६०० वि० तुलसी की जन्मतिथि लिखा है, वह भी निरा-धार है। डॉ० जार्ज ग्रियर्सन ने घट रामायण के आधार पर सं० १५८९ तिथि मानी है, जो डॉ० माताप्रसाद गुप्त को भी मान्य है क्योंकि यह गणना से शुद्ध उतरती है। पर यह है भादों सुदी ११ मंगलवार। इस तिथि की परम्परा का कोई प्रमाण नहीं, यह तो घट-रामायणकार की कल्पना-मात्र है। अधिक मान्य तो मूल गोसाईं चरित की तिथि सं० १५५४ सावन शुक्ला ७ होनी चाहिए, क्योंकि इसकी परम्परा है। मानस मयंक के लेखक ने भी इसे ही स्वीकार किया है।

---

[1]कवितावली, उत्तरकांड

इसको इस बात के कारण न ग्रहण करना कि तुलसी इसके मानने से अति दीर्घायु हो जाते हैं, कोई तर्क नहीं । अतः इस तिथि को ही तुलसी का जन्म समय समझना चाहिए । विस्तार को छोड़ने पर इसमें कोई गणना से शुद्धि या अशुद्धि की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि कोई दिन नहीं दिया । दिन आदि कोई भी हो सकता है ।

मृत्यु-तिथि

मृत्यु का सं० १६८० तो सभी को मान्य है । परन्तु कुछ लोग, सावन शुक्ला सप्तमी निधन तिथि मानते हैं, जो भ्रमवश दूसरे दोहे के प्रसङ्ग से लगा लिया जाता है । काशी के जमींदार और गोसाईं जी के मित्र टोडर के उत्तराधिकारी सावन कृष्ण ३ को निधन तिथि मानते हैं और इसी दिन सीधा आदि देते हैं । यही तिथि 'मूल गोसईं चरित' के इस दोहे में प्रकट है :—

संवत सोलह से असी, असी गंग के तीर ।
सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तजे शरीर ।

यह तिथि गणना से भी सही उतरती है । अतः सर्वमान्य है । यह है तुलसी के लौकिक जीवन का विवरण ।

रचना खंड

प्रामाणिक रचनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने किसी ग्रंथ में अपनी अन्य रचनाओं के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं किया। अतएव रचना-सम्बन्धी अन्तस्साक्ष्य इस प्रकार का अलभ्य है। परन्तु तुलसी की प्राय: समस्त रचनाओं में कहीं न कहीं अथवा बार-बार प्रत्येक छन्द में उनके नाम की छाप मिलती है जो उन्हें तुलसी द्वारा रचित घोषित करती है। तुलसी के रचना-सम्बन्धी उल्लेखों में कुछ मतभेद अवश्य मिलता है, जिसका प्रमुख कारण उनके ग्रन्थों के किसी खंड-विशेष को स्वतन्त्र रचना के रूप में मान लेने का भ्रम, या उनके नाम पर किसी अन्य की कृतियों का सम्मिलित हो जाना जान पड़ता है। इस बात को हम रचना-सम्बन्धी विभिन्न उल्लेखों में देखेंगे।

बाबा वेणीमाधवदास के 'मूल गोसाईं चरित' में कालक्रमानुसार नीचे लिखे ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है :—

राम-गीतावली तथा कवितावली के कुछ छन्द (सं० १६२८ से ३१ तक), कृष्ण-गीतावली (सं० १६२८), रामचरित मानस (सं० १६३१), दोहावली (सं० १६४०), सतसई और राम विनयावली (विनय पत्रिका) सं० १६४२; रामललानहछू, पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल (सं० १६४३) बाहुक (सं० १६६९), वैराग्य संदीपिनी रामाज्ञा प्रश्न और बरवै रामायण (सं० १६६९), इन तेरह ग्रन्थों में कवितावली का उल्लेख नहीं है; बाहुक का उल्लेख अवश्य है जो कि कवितावली के साथ ही प्राय: संलग्न मिलता है। सं० १६२८ में मिथिला-यात्रा के समय सीतावट पर तीन कवित्तों की रचना का उल्लेख इसमें हुआ है। इससे यह संकेत मिलता है कि कवितावली एक समय और स्थान पर लिखी रचना नहीं; वरन् विभिन्न स्थानों और समयों में रचित कवित्तों का संग्रह है।

शिवसिंह सेंगर के ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में उल्लेख इस प्रकार है—"इनके बनाये ग्रन्थों की ठीक-ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे अथवा हमारे पुस्तकालय में हैं, उनका जिक्र किया जाता है। प्रथम ४६ कांड, रामायण बनाया है, इस तफसील से १. चौथाई रामायण ७ कांड, २. कवितावली ७ कांड, ३. गीतावली ७ कांड, ४. छन्दावली ७ कांड, ५. बरवै ७ कांड, ६. दोहावली ७ कांड, ७. कुंडलिया ७ कांड और सिवाय इन ४६ कांड के १. सतसई, २. रामशलाका, ३. संकट मोचन, ४. हनुमत बाहुक, ५. कृष्ण-गीतावली, ६. जानकी-मंगल, ७. पार्वती-मंगल, ८. करखा छन्द, ६. रोला छन्द, १० भूलना छन्द इत्यादि और भी ग्रन्थ बनाये हैं। अन्त में विनयपत्रिका महाविचित्र मुक्तिरूप प्रज्ञानंद सागर ग्रन्थ बनाया है।"[१] इस विवरण के अनुसार ७ रामायणों और ११ अन्य ग्रन्थ मिलाकर १८ कुल ग्रन्थ तुलसी-रचित हैं। बाबा वेणीमाधवदास की सूची से इन में छन्दावली, कुंडलिया रामायण, रामशलाका, संकट मोचन, करखाछन्द, रोला छन्द, भूलना छन्द अधिक तथा बाहुक और वैराग्य सन्दीपिनी कम हैं।

डॉक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन ने इण्डियन एण्टिकारी,[२] में प्रकाशित अपने लेख 'नोटस ऑन तुलसीदास' में नीचे लिखे २१ ग्रन्थों का उल्लेख किया है—

रामचरित मानस, गीतावली, कवितावली, दोहावली, छप्पय रामायण, राम-सतसई, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, वैराग्य-सन्दीपिनी, रामलला-नहछू, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न या राम सगुनावली, संकट-मोचन, विनय-पत्रिका, बाहुक, रामशलाका, कुण्डलिया रामायण, करखा रामायण, रोला रामायण, भूलना, श्रीकृष्ण गीतावली। खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित मानस की भूमिका में भी उन्होंने इन्हीं ग्रन्थों का उल्लेख किया है; केवल ५ ग्रन्थों का एक साथ उल्लेख तुलसी पंचरत्न नाम से कर दिया है। परन्तु 'एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' में उन्होंने अधिक मान्य १२ ग्रंथों की ही सूची दी है[३]

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ४२६

२. Indian Antiquary. Vol. XXII 1893. p. 12.

३. Encyclopaedia of Religion and Ethics. Vol. 12. p. 470

जिसे दो भागों—बड़े ग्रंथ, छोटे ग्रन्थ में उल्लिखित किया है। ग्रन्थ ये हैं :—

बड़े ग्रंथ—कवितावली, दोहावली, गीतावली, कृष्ण-गीतावली, विनय-पत्रिका और रामचरित-मानस।

छोटे ग्रन्थ—रामलला-नहछू, वैराग्य सन्दीपिनी, बरवै रामायण, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, रामाज्ञा।

डॉक्टर ग्रियर्सन ने इन्हीं ग्रन्थों को प्रामाणिक रूप से स्वीकार किया है।

'बंगवासी' के मैनेजर की ओर से उपहार-स्वरूप ग्राहकों को १७ ग्रन्थ भेंट किये गये थे, जिसमें मानस के अतिरिक्त १६ अन्य रामायणों के भेट करने का उल्लेख हुआ था। इन ग्रन्थों की सूची यह है[१]—

१. मानस-रामायण, २. श्रीराम नहछू, ३. वैराग्य सन्दीपिनी, ४. बरवै रामायण, ५. पार्वती-मंगल, ६. जानकी-मंगली, ७. श्रीराम गीतावली, ८. श्रीकृष्ण गीतावली, ९. दोहावली, १०, श्री रामाज्ञा प्रश्न, ११ कवित्त रामायण, १२. कलिधर्माधर्म-निरूपण १३. विनय-पत्रिका, १४. छप्पय-रामायण, १५. हनुमान बाहुक, १६. हनुमान-चालीस, १७. संकट-मोचन। इस सूची में ग्रियर्सन की सूची से तीन नये नाम हैं : कलिधर्माधर्म-निरूपण, हनुमान-चालीसा, रामायण छन्दावली तथा चार कम नाम हैं—रामाशलाका, करखा रामायण, रोला रामायण और झूलना रामायण। समस्त नये ग्रन्थों को जोड़ने पर कुल २४ ग्रन्थ हुए। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखक मिश्र-बन्धुओं ने इस सूची में 'पदावली रामायण' नामक एक और ग्रन्थ जोड़ दिया है और इस प्रकार समस्त ग्रन्थों की रचना २५ हो जाती है। इनमें से मिश्र-बन्धुओं ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी नवरत्न'[२] में नीचे लिखे १२ ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है—

१. रामचरित-मानस, २. कवितावली, ३. गीतावली, ४. जानकी-मंगल,

---

१. देखिए, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा) प्रथम संस्करण, पृ० ३८४।

२. हिन्दी नवरत्न, चतुर्थ संस्करण, पृ० ८१-१०१।

५. कृष्ण-गीतावली, ६. हनुमान बाहुक, ७. हनुमान चालीसा, ८. रामशलाका, ९. राम-सतसई, १०. विनय-पत्रिका, ११ कलिधर्माधर्म-निरूपण, १२. दोहावली ।

मिश्रबन्धुओं की दृष्टि से अप्रामाणिक ग्रन्थ ये हैं—

१. करखा-रामायण, २. कुण्डलिया-रामायण, ३. छप्पय-रामायण, ४. पदावली-रामायण, ५. रामाज्ञा, ६. रामलला नहछू, ७. पार्वती-मंगल, ८. वैराग्य-संदीपिनी, ९. बरवै-रामायण, १०. संकट-मोचन, ११. छन्दावली रामायण, १२. रोला रामायण, १३. झूलना रामायण ।

मिश्रबन्धुओं के मतानुसार इस प्रकार रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, पार्वती-मंगली, बरवै और वैराग्य संदीपिनी भी अप्रामाणिक हैं । परन्तु प्राचीन टीकाकारों और परम्परा के अनुसार मान्यग्रन्थ ग्रियर्सन-द्वारा "एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स" में उल्लिखित १२ ग्रन्थ ही हैं । इन्हें ही बन्दन पाठक, महादेव प्रसाद, रामगुलाम द्विवेदी प्रभृत विद्वान रामायणी भी मानते हैं । पंडित रामगुलाम द्विवेदी का इस सम्बन्ध में एक छन्द है, जिसमें तुलसी की समस्त रचनाओं का उल्लेख हुआ है ।

राम लला नहछू त्यों विराग संदापिनी हूँ,
बरवै बनाइ बिरमाई मति साईं की ।
पारवती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाईं की ।
दोहा और कबित्त गीतबन्द कृष्ण राम कथा,
रामायन बिनै माँहि बात सब ठाईं की ।
जग में सोहानी जगदीश हू के मनमानी,
संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की ।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में तुलसी के नाम से लगभग ३५ ग्रंथ मिलते हैं, जो एक गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा ही नहीं, वरन् अन्य तुलसी नामधारी व्यक्तियों द्वारा भी रचे गये । तुलसी ग्रन्थावली के दोनों खंडों में

विद्वानों द्वारा १२ ग्रन्थ ही तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में स्वीकार किये गये हैं, जो निम्नांकित हैं—

१. रामचरित-मानस, २. रामलला-नहछू, ३. वैराग्य संदीपिनी, ४. बरवै रामायण, ५. पार्वती-मंगल, ६. जानकी-मंगल, ७. रामाज्ञा प्रश्न, ८. दोहावली, ९. कवितावली, १०. गीतावली, ११. श्रीकृष्ण-गीतावली, १२. विनय-पत्रिका।

यही ग्रन्थ आज तक विद्वानों और हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा मान्य हैं।

संक्षिप्त परिचय

१. रामलला नहछू—'मूलगोसाईं चरित' के अनुसार नहछू की रचना मिथिला में हुई थी। 'नहछू' में सोहर छन्द हैं, जो विवाह के अवसर पर गाने के लिए बनाये गये हैं। यद्यपि राम विवाह के समय जनकपुरी में थे अयोध्या में नहीं, फिर भी इसमें अयोध्या में राम के वैवाहिक नहछू का वर्णन किया गया है, जिस पर शंका उठ खड़ी होती है। कुछ लोगों का विचार है कि यह विवाह का नहीं, यज्ञोपवीत के अवसर का नहछू है। उस समय भी लगभग वही समस्त प्रथाएँ बरती जाती हैं। वास्तव में यह ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य के रूप में नहीं, वरन् व्यावहारिक सांस्कृतिक गीत के रूप में निर्मित हुआ है। राम का चरित्र यहाँ पर निमित्त मात्र है। इस अवसर पर सम्भवतः अन्य भद्दे और फूहड़ किस्म के नहछू प्रचलित रहे होंगे और तुलसी ने एक सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति के हेतु नहछू की रचना की। राम एक सामान्य दूल्हे के प्रतीक हैं, कौशल्या, दूल्हें की माता का प्रतीक हैं और इस प्रकार प्रथा और सांस्कृतिक कृत्य के निर्वाह के हेतु राम.कथा का काल्पनिक माध्यम स्वीकार किया गया है। इसमें आये हुए शृङ्गारिक चित्र दो बातें स्पष्ट करते हैं—पहली बात तो यह है कि तुलसी की प्रारम्भिक रचना है और दूसरी यह कि इस अवसर पर प्रदर्शित प्रचलित रसिकता की अवहेलना इस ग्रंथ में नहीं की गयी है। तुलसी यहाँ मर्यादावादी न होकर यथार्थवादी रूप में अधिक प्रकट हुए हैं। इसी कारण से कुछ लोग इसे तुलसीकृत होने में सन्देह भी प्रकट करते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं। यह सांस्कृतिक कृत्य के अनुकूल लोक-प्रचलित रसिकता प्रवाह से मेल रखता हुआ यथार्थवादी काव्य है और तुलसी की सरस और लोकगीत-ढाँचे में ढली हुई अवधी रचना है। चित्र और भाव बड़े ही स्पष्ट और मनोग्राही हैं। फिर भी उनकी अन्य रचनाओं से यह निम्न स्तर की है।

२. वैराग्य संदीपिनी—वैराग्य संदीपिनी की रचना विद्वानों[1] ने दोहावली के पहले मानी है, क्योंकि इसमें कुछ दोहे वही हैं जो दोहावली में भी संकलित हैं और प्रौढ़ता की दृष्टि से प्रारम्भिक रचना ही जान पड़ती है। इसे चार प्रकरणों में विभक्त किया गया है—१. मंगलाचरण, २. संत-स्वभाव वर्णन, ३. संत-महिमा वर्णन, ४. शांति वर्णन। इसके अंतर्गत, सदाचार, सत्संग, वैरागम आदि के द्वारा भक्ति भाव को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है। ग्रन्थ में कुछ दोहे दोहावली के हैं तथा कुछ ही अन्य है जो तुलसीदास के काव्य की विशेषता रखते हैं, शेष तो निर्गुण संत-काव्य की उपदेशात्मकता अपनाये हैं; गोस्वामी जी के कथन की सरलता और उक्तिवैचित्र्य इसमें देखने को नहीं मिलती। फिर भी समस्त ढाँचे को देखने से उनकी ही रचना प्रतीत होती है। यह वैरागियों और साधु संन्यासियों के लिए लिखी गयी कृति है, जिसमें अहंभाव के त्याग, संतों की संगति और वैराग्य से भक्ति प्राप्त करने का उपदेश है। इससे मिलते-जुलते दोहे संत तुलसीदास निरंजनी के भी हैं।

३. बरवै रामायण—बरवै रामायण स्वतन्त्र ग्रन्थ-रूप में लिखी रचना नहीं है; वरन् समय-समय पर लिखे गये बरवै छन्दों का संकलन है। बेनीमाधव-दास के अनुसार बरवै की रचना सं० १६६९ में की गयी—

> कवि रहीम बरवै रचे पठये मुनिवर पास।
> लखि तेइ सुन्दर छंद में रचना किए प्रकास॥

वैसे भी प्रचलित है कि रहीम ने अपने किसी सरदार की स्त्री के द्वारा रचित बरवै की एक पंक्ति पर मुग्ध होकर इस ललित छन्द में अपने बरवै नायिका भेद की रचना की थी और गोस्वामी तुलसीदास जी को भी अवधी के इस ललित छन्द में रचना करने को कहा था जिसके परिणामस्वरूप तुलसी ने बरवै छन्दों में रचना की थी। बरवै अवधी का अत्यन्त मोहक छन्द है। भाव और स्वर के असीम विस्तार का इस छोटे से छन्द में पूरा अवकाश है। अंतिम

---

१. गोस्वामी तुलसीदास—(डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० बड़थ्वाल कृत) पृ० ९२

गुरु लघु का क्रम-भाव और स्वर-विस्तार की असीमता को समेटे है और मध्य लघुतावादी अवधी के शब्द लोचपूर्ण लालित्य के सजीव रूप हैं।

बरवै रामायण में कुल मिलाकर ६९ छंद हैं, जो सात कांडों में विभक्त हैं। बालकांड, अयोध्याकांड के छन्द रूप, चरित और भाव-चित्रण की सूक्ष्मविशेषता लिए हुए हैं। इन छन्दों में गोस्वामी तुलसीदास ने छोटे-छोटे परन्तु ललित अलंकारों का सुष्ठु मनोहारी प्रयोग किया। सीता के सौन्दर्य, राम के चरित्र, शील, स्वभाव का वर्णन, सीता का विरह-वर्णन, सेना-वर्णन आदि अद्भुत आलंकारिक सौन्दर्य से पूर्ण हैं। उत्तरकांड के २७ बरवै छन्दों में वैराग्य, दैन्य, शांत आदि भावों से परिपूर्ण भक्ति का वर्णन है और इस योजना में बरवै, कवितावली की पद्धति पर ही संकलित रचना है। इसमें कोई प्रबंध नहीं, और न कथानक योजना ही है। ये बरवै छन्द मुक्तकरूप में हैं; परन्तु कलात्मक सौन्दर्य की बारीकी इन्हें काव्य-प्रेमी जनों का कण्ठहार बनाये है। प्रत्येक बरवै मणि-मुक्ता के समान आभामय है और पाठक की यह इच्छा होती है कि ऐसे ही और छन्दों का आनन्द वे प्राप्त करें। इसी इच्छा का ही परिणाम, यह विश्वास जान पड़ता है कि तुलसी का यह ग्रन्थ वृहद् रूप में रहा होगा। प्राप्त छन्द वृहद् मणिमाला के बिखरे मणि हैं, जो इस रूप में संकलित हुए हैं।

४. **पार्वती-मंगल**—यह, शिव-पार्वती आख्यान के अंतर्गत पार्वती-परिणय प्रसंग के आधार पर लिखा गया खंड काव्य है। कथानक का विकास सुसंगठित और सौष्ठवपूर्ण है। यह मानस में वर्णित शिवकथा से भिन्न है। मानस की शिव-कथा का आधार शिवपुराण है जबकि 'पार्वती-मंगल' का आधार 'कुमार-संभव' है। कुमारसंभव की कथा का सुन्दर सुसंगठित रूप पार्वती-मंगल में प्रस्तुत किया गया है। मानस के अनुसार पार्वती-मंगल की रचना तिथि का संकेत कवि ने दिया है—

जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि विरचेउं मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु ॥[1]

---

१. पार्वती-मंगल, छं० ५।

यह प्रारम्भ में दिया गया है। अतः सिद्ध है कि जय संवत् में फागुन सुदी ५ गुरुवार को अश्विनी नक्षत्र में पार्वती-मंगल की रचना हुई थी। जय संवत्, सं० १६४२ से प्रारम्भ होकर सं० १६४३ में समाप्त होता है। संवत् १६४२ में फागुन सुदी ५ रविवार को पड़ती है गुरुवार को नहीं। संवत् १६४३ में यह गुरुवार को पड़ती है।[1] अतः जान पड़ता है कि समस्त १६४३ संवत् जय संवत् न होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास ने कुछ अंशों में होने के कारण अंतिम खंड का उल्लेख भी जय संवत् के अंतर्गत किया है। अतः पार्वती-मंगल का रचना काल सं० १६४३ वि० मानना चाहिए।

पार्वती-मंगल में मंगल और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग किया है और इसमें पार्वती के जन्मादि का संक्षेप में, पर तपस्या और विवाह का वर्णन विस्तार से किया है। विशेष रोचक और निखरे हुए प्रसंग पार्वती-बटु संवाद, वैवाहिक सांस्कृतिक कृत्य हैं, जो बड़े ही सजीव और मार्मिक हैं। पुस्तक के उपसंहार तथा समस्त वर्णन से यह जान पड़ता है कि यह मंगल उन्होंने महिलाओं के गीत या पठनार्थ लिखा है, जैसा कि अंतिम पंक्तियों-द्वारा स्पष्ट है—

प्रेमपाट पटडोरि गौरि-सर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।
मृगनयनि विधुवदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो।
उर धरहु जुवती जन विलोकि तिलोक शोभा सार सो।
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं॥

अतः तुलसी की यह कृति मांगलिक है और इसका सांस्कृतिक महत्त्व है।

५. जानकी-मंगल—'जानकी-मंगल' भी ठीक इसी प्रकार का ग्रंथ है। छन्द, भाषा आदि की दृष्टि से भी यह पार्वती-मंगल की शैली पर ही गया है। उद्देश्य और शैली में साम्य होने से यह कहा जा सकता है कि दोनों

---

१. देखिये डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रथम संस्करण, पृ० २३२-३३ तथा Indian Antiquary. Vol. XXII (1893) p. 15-16 पर डॉ० ग्रियर्सन का लेख।

के रचना काल में भी विशेष अंतर नहीं। बाबा बेनीमाधव दास के अनुसार गोस्वामी जी ने वाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि सं० १६४१ में की थी। उसी के बाद ही इसकी रचना जान पड़ती है; क्योंकि जानकी-मंगल के कथानक पर वाल्मीकि रामायण के कथानक का प्रभाव है। इसमें परशुराम का आगमन विवाहोपरान्त बारात के जनकपुरी से लौटने पर मार्ग में होता है तथा परशुराम और राम-लक्ष्मण संवाद अत्यन्त संक्षिप्त है और केवल पंक्तियों में समाप्त हो जाता है। पुष्पवाटिका प्रसंग भी इसमें नहीं। इस मंगल में प्रमुख उद्देश्य विस्तारपूर्वक वैवाहिक मांगलिक कृत्यों का वर्णन है। इसी से इसका नाम भी मंगल है। लोकसंस्कृति, प्रथाओं और विश्वासों का चित्रण इसमें विशेषरूप से हुआ है। इनके अधिक विस्तृत वर्णन के कारण जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, से अधिक बड़ा है। यह २१६ छन्दों में समाप्त हुआ है जबकि पार्वती-मंगल १६४ छन्दों में ही। खंडकाव्य की दृष्टि से यह अत्यन्त सफल हैं।

६. रामाज्ञा प्रश्न—रामाज्ञा प्रश्न के ७ वें सर्ग के ७ वें सप्तक के तीसरे दोहे में रचनाकाल का संकेत मिलता है, जो इस प्रकार है—

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान।
होइ सुफल सुभ जासु जस प्रीति प्रतीति प्रमान ॥

इसमें ससि = १, नयन = २, गुन = ६, बान नयन अधिकावधि (५—४ = १) से रचनाकाल सं० १६२१ निकलता है। इसके पहले छक्कनलाल को मिली हुई एक प्रति में सं० १६५५ जेठ सुदी १० रविवार को लिखी होने का उल्लेख है। उपर्युक्त दोहे का अंतस्साक्ष्य मिल जाने से सं० १६५५ केवल प्रतिलिपि काल माना जा सकता है। इसी को कुछ विद्वानों ने दोहावली रामायण नाम भी दिया है। इसमें दोहों में संकेतात्मक रूप में विभिन्न कांडों की रामकथा वर्णित है। प्रथम सर्ग में बालकांड की घटनाओं का संकेत है; द्वितीय सर्ग में अयोध्याकांड और अरण्य की, तृतीय में अरण्य और किष्किन्धा की; चतुर्थ में फिर बालकांड की; पंचम में सुन्दरकांड और लंकाकन्ड की षष्ठ में उत्तरकांड की घटनाओं का सन्निवेश है, तथा सप्तम सर्ग में स्फुट प्रसंगों का निर्देशन। विद्वानों का विचार है कि चतर्थ सर्ग में पुनः बालकांड की घटनाओं का समावेश इस

कारण से है कि जिससे पुस्तक के मध्य में मंगलमय प्रसंग आ सकें। इसी कारण से कथानक के विकास की दृष्टि से व्याघात होते हुए भी बालकांड प्रसंग चतुर्थ सर्ग में हैं।[1] वास्तव में रामाज्ञा प्रश्न को प्रबन्धात्मक नहीं माना जाना चाहिये। अतएव यह दोष नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कवि ने जिस उद्देश्य से इसे लिखा है, यह उद्देश्य पूर्ण इसी विधि से होता है। प्रथम सर्ग के सातवें सप्तक का अन्तिम दोहा है—

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर, गोगन गङ्गा राम॥

इस संकेत से सम्बधिन्त एक कथा प्रचलित है कि गंगाराम ज्योतिषी थे और तुलसी के मित्र थे। ये प्रह्लादघाट पर रहा करते थे तुलसी नित्य इनके साथ गंगापार संध्यावंदन आदि को जाया करते थे। एक दिन जब तुलसी उन्हें बुलाने गये तो उन्हें अत्यन्त खिन्न देखकर कारण पूछा। गंगाराम ने बताया कि राजघाट के राजकुमार शिकार खेलने गये थे। वहाँ उनके साथी को बाघ ने मार डाला। खबर फैल गयी कि राजकुमार को बाघ ने खा डाला। राजा ने मुझे बुलाया और कहा कि विचार कर सच बताओ। ठीक होने पर एक लाख रुपये पुरस्कार और गलत होने पर प्राणदंड मिलेगा। उसी सोच में बैठे थे। गोस्वामीजी ने उनकी इस विपत्ति को दूर करने के लिए वह छह घंटे में रामाज्ञा प्रश्न का निर्माण किया। जिस पर विचार कर गंगाराम ने दूसरे दिन राजकुमार के सकुशल लौट आने का उत्तर दिया। गंगाराम को उस समय बन्दीगृह में रख दिया गया। दूसरे दिन राजकुमार जब सचमुच आ गये, तब वे मुक्त हुए। एक लाख रुपया लेकर, उन्होंने गोस्वामी जी को दिया। उन्होंने केवल १२ हजार लेकर हनुमान जी के बारह मन्दिर बनवाये। यह कथा गोस्वामी जी का महात्म्य बढ़ाने के लिए प्रचलित जान पड़ती है। घटना सत्य होते हुए भी ६ घंटे में २४३ छन्दों का निर्माण असंभव-सा जान पड़ता है। हो सकता है कि इस ग्रन्थ के रचने की प्रेरणा देने का श्रेय उपर्युक्त घटना को हो।

१. डॉ० राजकुमार वर्मा : हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४०७, प्र० संस्करण।

'रामाज्ञा प्रश्न' में वर्णित कथा पर वाल्मीकि रामायण की कथा का ही प्रभाव अधिक है। परशुराम का विवाहोपरान्त आगमन, विप्र, उल्लू, श्वान के न्याय को निपटाना एवं सीता निर्वासन, लवकुश जन्म आदि का उल्लेख यही सिद्ध करता है। पुस्तक में रसभाव या कवित्वपूर्ण रचनाएँ अधिक नहीं, वरन् घटनाओं के गूढ़ संकेत ही मिलते हैं।

७. **दोहावली**—दोहावली की रचना भी एक सुदीर्घ समय में हुई जान पड़ती है। रुद्रबीसी का उल्लेख उसे सं० १६५६ से ७६ तक की रचना होने का संकेत करता है। बाहु पीड़ा का भी इसमें उल्लेख है, इसके अतिरिक्त इसमें रामचरित मानस के ८५ दोहे, वैराग्य संदीपिनी के २ दोहे, रामाज्ञा प्रश्न के ३५ दोहे और १३१ दोहे ऐसे हैं जो सतसई में मिलते हैं। दोहावली शुद्ध मुक्तक रचना है। इसमें कोई एक दोहा दूसरे दोहे का मुखापेक्षी नहीं। साथ ही साथ प्रमुख उद्देश्य नीति-वर्णन है। समाज, धर्म, व्यक्ति और राजनीति के सुन्दर प्रसंग इसमें देखने को मिलते है। दोहावली में भक्ति-सम्बन्धी दोहे भी कम नहीं है और उनमें अद्भुत चमत्कार है। चातक के प्रसंग में प्रतीक-रूप से लिखी गयी उक्तियाँ भक्ति का एक आदर्श रूप प्रस्तुत करती हैं। ज्योतिष-सम्बन्धी भी अनेक दोहे हैं। व्यक्ति के आचार और नीति सम्बन्धी दोहे तो बड़े ही चुटीले हैं। अप्रस्तुत वस्तुओं या व्यापारों की योजना द्वारा प्रस्तुत या वर्ण्य तथ्य का बड़ा ही सुन्दर स्पष्टीकरण अनेक दोहों में हुआ है। जैसे—

राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरसत बारिद बूँदि गहि, चाहत चढ़न अकास॥
तुलसी तृन जलकूल को, निरबल निपट निकाज।
कै राखै कै संग चलै, बाँह गहे की लाज॥
तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमें पूँछिहैं कौन॥

दोहावली में सबसे महत्वपूर्ण वर्णन राज्यादर्श सम्बन्धी हैं, जिसमें तुलसीदास ने कलियुग के राजाओं के अनीतिपूर्ण व्यवहार का स्पष्टीकरण किया है साथ

ही विभिन्न प्राकृतिक व्यापारों के उदाहरणों से राजनीति का आदर्श भी प्रकट किया है। इस प्रकार दोहावली विविध ज्ञान का भंडार है।

८. कवितावली—विभिन्न समयों और स्थानों पर लिखे गये कवित्त, सवैया आदि छन्दों का कांड के अनुसार संग्रह है। वह क्रमबद्ध रूप में रचित एक प्रबन्ध ग्रन्थ नहीं। इस बात के अनेक प्रमाण हैं। पहला तो यह है कि इसकी बालकांड, अयोध्याकांड की ललित, मधुर, साहित्यिक शैली के विपरीत सुन्दर और लंकाकांड की ओजपूर्ण एवं प्रसाद गुणपूर्ण शैली है। साथ ही उत्तरकांड तो पूर्णतया सरल शान्त-भक्ति के भावों से ओतप्रोत और कथानक से नितान्त स्वच्छन्द एक अलग स्वतन्त्र रचना के रूप में लिखा गया काव्य-सा है। उत्तरकांड के अधिकांश छन्द विनय-पत्रिका के पदों से मेल खाते हैं। दूसरा कारण यह है कि उत्तरकांड में विभिन्न स्थानों का अप्रासंगिक स्वतन्त्र वर्णन है जैसा अन्नपूर्णा, प्रयाग, चित्रकूट, सीतावट आदि जो यह सिद्ध करता है कि ये छन्द विशेष उन्हीं स्थानों पर निकले हुए कवि के उद्गार हैं। तीसरा कारण यह है कि इसमें काशी की महामारी, रुद्रबीसी, मीन की सनीचरी, तथा अन्तिम महाप्रयाण का वर्णन है। जिनकी तिथियाँ क्रमशः सं० १६७३, सं० १६५६ से ७६, सं० १६६९ से ७१ तथा सं० १६८७ हैं; जिससे यह प्रगट है कि इसमें कम से कम दस-बारह वर्ष की रचनाएँ सम्मिलित हैं। चौथा कारण यह है कि इसके अनेक सवैया, कवित्त आदि ऐसे हैं, जिनके से भाव वाले छन्द, रामचरित मानस, गीतावली, विनयपत्रिका आदि ग्रन्थों में पाये जाते हैं, जिससे ऐसा जान पड़ता है कि विभिन्न ग्रन्थों की रचना करते समय, जो भाव कवित्त, सवैया में बँधकर निकले, उनमें कुछ और जोड़कर किया गया संग्रह ही कवितावली है।

इस प्रकार विरचित कवितावली सरस, मधुर और ओजपूर्ण छन्दों से भरपूर है, इसके अनेक ललित छन्द बड़े प्रसिद्ध भी हैं। वास्तव में इसके बालकांड से लंकाकांड तक तो राम के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले विविध दृश्यों की सुन्दर और प्रभावपूर्ण झाँकियाँ हैं। ये दृश्य कथानक के सूत्र से बहुत तारतम्य युक्त रूप में बद्ध नहीं हैं, पर ये दृश्य हैं बड़े ही सजीव। राम के बालरूप की झाँकी, धनुषयज्ञ प्रसंग, बनवास प्रसंग, मार्ग में जाते हुए रूप को देखकर मार्ग-

वासी जनों के भाव, लंकादहन, हनुमान लक्ष्मण आदि के युद्ध बड़े मनोरम प्रसंग हैं। उत्तरकांड में कलियुग की दशा का वर्णन बड़ा ही मार्मिक है, जो समकालीन जनता की दशा का यथार्थ चित्र उपस्थित करता है। कलियुग में विपरीत आचरण का एक दृश्य देखिये—

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रुँधिवे को सोई सुरतरु काटियत है।
गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचिहू कौ,
आपने चना चबाय हाथ चाटियत है।
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी भूरिभागी डांटियत है।
कलि को कलुष मन मलिन किये कहत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत हैं।

अकाल के समय उठने वाली त्राहि-त्राहि और हाहाकार का स्वर भी कवितावली में गूँजता है और गोस्वामी जी की बाल्यावस्था की अत्यन्त दीन दशा की आर्त पुकार भी। बचपन में चार चनों को चार फल मानने वाले गोस्वामी तुलसीदास आत्मचरितात्मक संकेत भी इसमें अनेक मिलते हैं। इस प्रकार व्यक्ति और समाज का, राम के महान चरित्र की पृष्ठभूमि में कविता-वली के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। और उनका यह ग्रन्थ जितना लोकप्रिय है, उतना ही अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण भी।

बाहुक—कवितावली से ही संलग्न हनुमान-बाहुक भी मिलता है, जिसमें ४४ कवित्तों के अन्तर्गत गोस्वामी जी ने अपनी भयंकर बाहुपीड़ा का निवेदन हनुमान जी तथा अन्य देवताओं से किया है। इसमें तीव्र भाव प्रकाशन है और प्रौढ़ शैली है और जान यही पड़ता है कि यह रचना बाहुपीड़ा के अवसर पर ही लिखी गयी। हनुमान के बल, चरित्र और कथा का संकेतात्मक उल्लेख इसमें है। रचना अनेक रूपकों द्वारा साहित्यिक उत्कृष्टता से पूर्ण तथा सजग प्रौढ़ शब्दावली के संयोजन से महत्वपूर्ण है।

६. गीतावली—गोस्वामी जी की ललित पद-रचना है। कवितावली की

अपेक्षा गीतावली में अधिक तारतम्यपूर्ण घटना-संगठन है। गीतों में यों भी प्रबन्ध धारा की गति मन्द हो जाती है और कथात्मक विकास अच्छा नहीं बन पड़ता, भाव की गहराई अवश्य देखी जा सकती है और यही गीतावली में भी है। कथानक की दृष्टि से भी गीतावली, रामचरित मानस से भिन्न है। इसमें परशुराम संवाद का कोई उल्लेख नहीं। इसके साथ-ही-साथ उत्तरकांड में सीता के निष्कासन और लवकुश कथा का भी उल्लेख है। यद्यपि इस निष्कासन का कारण उन्होंने यह दिया है कि राजा दशरथ की असमय मृत्यु हो गयी थी और उनकी अवशिष्ट का उपभोग करने के लिए राम को सीता-त्याग करना पड़ा। इस कारण को प्रस्तुत करके तुलसी ने राम के ऊपर आरोपित लांछन को हटाने का प्रयत्न किया है। उत्तरकांड गीतावली में भी विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें रामराज्य की समृद्धि का वर्णन तो है ही, साथ ही राम की दिनचर्या का भी बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण है। कृष्ण काव्य का भी प्रभाव यहाँ दृष्टिगोचर होता है। दीपावली और हिंडोलोत्सव का भी वर्णन गीतावली में है। समस्त काव्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सांस्कृतिक एवं कोमल स्त्रीसुलभ भावनाओं का वर्णन करने वाला काव्य महिला समाज के लिए रचा गया है। स्त्री समाज में प्रचलित विश्वास, टोना-टुटका, परस्पर वार्तालाप का ढंग, बच्चों के प्रसंगों की चर्चा, उनकी क्रीड़ा का वर्णन, प्रेम-प्रसंग आदि का विशद चित्रण इस बात की पुष्टि करने वाला है। गीतावली इस प्रकार एक ललित और सरस रचना एवं प्रौढ़ साहित्यिक कृति है।

गीतावली का प्रमुख आकर्षण कथानक नहीं, वरन् भाव-संपत्ति है। शृंगार, हास्य, वीर, करुण रसों की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर है। शृंगार के दोनों पक्षों तथा वीर और करुण के चित्रण मन को मुग्ध कर लेने वाले हैं। वात्सल्य रस का भी इसमें वर्णन है। कौशल्या और दशरथ के प्रसंगों में इसके संयोग, वियोग दोनों ही पक्ष प्रकट हैं। वात्सल्य वियोग की उन्माद दशा का एक चित्रण इस ग्रन्थ की भाव-गम्भीरता को स्पष्ट कर देगा; कौशल्या कह रही हैं—

माई री मोंहि कोउ न समुझावै।
राम गमन साँचो किधौं सपनो उर परतीति न आवै॥

लगेई रहत इन नैनिन आगे रामलखन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को बिधि जो भयो विपरीता।।
दुख न रहै रघुपतिहिं बिलोकत तन न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि! अरुझि परी यहि लेखे।।
कौसल्या के बिरह बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-विरह की पीर न जाति बखानी।।

अलंकार से हीन इस प्रकार के भावपूर्ण पदों से गीतावली भरपूर है। अनेक स्थलों पर भाव की तीव्रता को प्रकट करने वाली पंक्तियाँ मानस पर स्थायी प्रभाव डाल देती हैं। धनुषयज्ञ की चहल-पहल, राम के बनवासी होने पर बन में रहने वाले जनों के कोमल भाव, सीताहरण पर पंचवटी की स्थिति, भरत के चित्रकूट जाने पर शुक-सारिका संवाद, अशोकवन में सीता की विरहदशा, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम का भाव आदि अनेक स्मरणीय मार्मिक प्रसंग गीतावली की काव्य-संपत्ति हैं। तुलसी की रचनाओं में इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

१०. **कृष्ण-गीतावली**—कृष्ण-गीतावली कम प्रसिद्ध परन्तु अत्यधिक प्रौढ़ कृति है। ६१ पदों में इसके भीतर कृष्ण का बड़ा सजीव रूप प्रकट हुआ है। कृष्ण की बालसुलभ चेष्टाओं, चरित्र और स्वभाव का मोहक और आकर्षक रूप कृष्ण-गीतावली में स्पष्ट चित्रित है। बोलचाल की सजीव मुहावरेदार ब्रजभाषा समस्त चेष्टाओं और व्यापारों का एक नाटकीय रूप प्रस्तुत कर देती है और ऐसा जान पड़ता है कि जैसे कृष्ण स्वयं हमारे सामने खड़े हैं। एक गोपी बार-बार उलाहना देने आती है। यशोदा इन उलाहनों से तंग आकर कृष्ण को डाँटती हैं। कृष्ण किस प्रकार गोपी के उलाहना और यशोदा की शंका का उत्तर देते हैं।

अबहिं उरहनों दै गई बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया! तेरी सौं करौं याकी टेव लरनि की सकुल बेंचि सी खाई।
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्यायी।
मुँह लाये मूड़हिं चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई।

यह कहते हुए कृष्ण का प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व कैसा निखर आता है। कृष्ण-गीतावली में कथा-प्रबन्ध नहीं, मुक्तक रूप में गीतों की रचना है फिर भी साहित्यिक प्रौढ़ता अतुलनीय है। उद्धव निर्गुण उपासना का संदेशा लेकर गोकुल गोपियों के पास पहुँचे। उन्होंने उनका भौंरे के रूप में स्वागत किया और निर्गुण का मजाक उड़ाया। यह व्यंग पूर्ण पद कितना सरस और विदग्धतापूर्ण है—

मधुकर ! कान्ह कहा ते न होहीं।
कै ये नयी सिखी सिखई हरि निज अनुराग बिछोही।
राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातें बकुचौहीं ॥
स्याम सों गाहक पाय सयानी खोलि देखाई है गौं ही ॥
नागरमनि सोभासागर जेहि जग जुवती हँसि मोही ॥
लियो रूप दै ज्ञान गाँठरी, भलो ठग्यो ठगु आही ॥
है निर्गुन सारी बारिक, बलि, घरी करौ हम जोही ॥
तुलसी ये नागरिन जोग पट जिन्हहिं-आजु सब सोही ॥

इस प्रकार कृष्ण-गीतावली में भाषा और भाव दोनों ही का वैदग्ध्यपूर्ण चित्रण हुआ है। बाल-मनोविज्ञान, युवावस्था के प्रेम के चित्रण के प्रसंगों द्वारा गोस्वामीजी ने सगुणोपासना का महत्व भी स्पष्ट किया है। गोपियों का विश्वास चरित्र, निष्ठा और अनन्यता उन्हें आध्यात्मिकता के ऊँचे स्तर पर प्रतिष्ठित करती हैं। जो सिद्धांत तुलसी ने, 'मानस' आदि राम के चरित्र चित्रण द्वारा स्पष्ट किया है, वही कृष्ण गीतावली में कृष्ण के चरित्र द्वारा प्रकट हुआ है। प्रौढ़ ब्रजभाषा का एक उत्कृष्ट उदाहरण हमें इस कृति में देखने को मिल जाता है जो गोस्वामीजी के अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं के असाधारण अधिकार का द्योतक है।

११. विनय-पत्रिका—विनय-पत्रिका, रामचरित-मानस के समान अत्यंत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कलियुग की कुचाल से पीड़ित होकर—जैसा कि कवितावली में भी संकेत है—गोस्वामी तुलसीदास ने राम के दरबार में विनय-पत्रिका प्रेषित की थी, जो एक अर्जी या प्रार्थनापत्र के रूप में है। इसमें सबसे पहले

मंगलाचरण रूप में गणेश-वंदना है, फिर सूर्य, शंकर, देवी, गंगा, यमुना, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता और राम तथा नर-नारायण, बिन्दुमाधव की स्तुतियाँ हैं। इस सिरनामे के बाद विनयावली है, अंत में भरत-लक्ष्मण के अनुमोदन पर तथा सीता के याद दिलाने पर राम की स्वीकृति है। इस क्रम-बद्धता को देखते हुए इसे पत्र-प्रबन्ध मानना चाहिए। अनेक पद स्वतंत्र होते हुए भी प्रारम्भ और अंत में क्रम को बदला नहीं जा सकता।

'विनय-पत्रिका' भक्तों का कण्ठहार है। इसमें गोस्वामीजी की निजी भक्ति भावना का विकास देखने को मिलता है। भक्ति के विभिन्न भावों का जिस सच्चाई और स्वाभाविकता के साथ इसमें वर्णन हुआ है, वह उत्कृष्ट गीतिकाव्य का नमूना है। भक्ति की सरल और गम्भीर धारा असंख्य भावों की तरंगों से तरंगित होती हुई इसमें प्रवाहित हुई है। दैन्य, विश्वास, आत्म-भर्त्सना, निर्वेद बोध, दृढ़ता, हर्ष, गर्व, उपालम्भ, मोह, चिन्ता, विषाद, प्रेम आदि विविध भाव अपने सजीव रूप में विनय-पत्रिका में विद्यमान् हैं। विनय-पत्रिका के भीतर स्थायी भाव को निर्वेद कहकर व्यक्त नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त भावों से पुष्ट और अनुराग से ओतप्रोत होकर यह भक्ति रस का ही प्रवाह है, शांत रस नहीं। क्योंकि लोक सुखों से निर्वेदात्मक होते हुए भी यह राम के प्रति अनुरागात्मक है। ऐसी कृतियों के द्वारा ही भक्ति जैसे रसों की मान्यता प्राप्त हुई।

यद्यपि गीतिकाव्य आधुनिक युग की देन है, फिर भी गोस्वामीजी ने विनय पत्रिका में शुद्धगीति काव्य का उत्कृष्ट नमूना रखा है। इतना ही नहीं यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है और इसके द्वारा गीतियों में भी एक प्रकार का प्रबंधरूप प्रस्तुत किया गया है, जो अनुकरणीय है।

विनय-पत्रिका के भीतर गोस्वामीजी ने विभिन्न दार्शनिक मतवादों के झमेले में न पड़कर एक भक्ति मार्ग को अपनाने का संकेत किया है और इस मार्ग पर अपनी अटूट और अडिग आस्था स्पष्ट की है। यह रामभक्ति का पथ उनके लिए स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही का साधन है और वह राजमार्ग है, जिसपर चल कर किसी को भटकना नहीं पड़ता। वे इसलिए कहते हैं 'गुरु-

कह्यौ राम भजन नीको मोंहि लगत राज डगरो सो।' इस भक्ति मार्ग को उन्होंने प्रौढ़ विचार के उपरान्त अपनाया है, कोई भावुकतावश ग्रहण किया हुआ पथ नहीं। अपने लिए तो वे और कोई भी भरोसा नहीं समझते। उनकी यह दृढ़ आस्था निम्नांकित पद में किस व्यावहारिक उपयोगिता को स्पष्ट करती हुई प्रकट हुई है—

नाहिन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरो सो।।
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करो सो।।
पायेहि पे जानिबो करम-फल भरि भरि वेद परोसो।।
आगम विधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो।।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग बियोग धरो सो।।
काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो।।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।।
बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोंहि लगत राज डगरो सो।।
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि-फिर पचि मरै मरो सो।।
राम नाम-बोहित भव-सागर चाहे तरन तरो सो।।[1]

इस प्रकार विनय-पत्रिका मनुष्य के सक्रिय आध्यात्मिक जीवन का सजीव चित्र है। रामचरित मानस यदि ज्ञान-रत्नाकर है, तो विनय-पत्रिका भावाम्बोधि हैं।

१२. रामचरित-मानस—'नाना पुराण निगमागम सम्मत' रामचरित मानस हिन्दू संस्कृति का सारभूत ग्रन्थ है। इसके भीतर भारतीय दृष्टि से जीवन की एक पूर्ण कल्पना प्रस्फुटित हुई है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के व्यक्तित्व में नर और नारायणत्व का समन्वित स्वरूप विद्यमान् है। यह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसकी रचना गोस्वामी तुलसीदास ने सं० १६३१ वि० चैत्र शुक्ल ६ मंगलवार को प्रारम्भ की थी। यह सात कांडों में विभक्त है; फिर भी कथा का विस्तार इतना है कि महाकाव्य के ८ सर्गों से अत्यधिक

१. विनय-पत्रिका, १७३ पद।

है। विभिन्न मात्रिक और वर्णिक छन्दों का यथास्थान प्रयोग करते हुए तुलसी ने मानस को प्रमुखतया दोहा और चौपाइयों में लिखा है। प्रायः चार चौपाइयों पर एक दोहा रखा गया है। रामचरित मानस के अन्त में समस्त रचना में चौपाइयों का संकेत करते हुए तुलसी ने लिखा है—

सतपंच चौपाई मनोहर जाति जे नर उर धरैं।
दरुन अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुबीर हरैं।

इससे ५१०० चौपाई १०२०० अर्द्धाली होती हैं जो कि प्रामाणिक प्रतियों से सत्य सिद्ध हो जाती हैं। मानस की रचना में यद्यपि भ्रमर वृत्ति से गोस्वामोजी ने समस्त उपलब्ध ग्रन्थों के भाव रखे हैं, पर प्रमुख आधारभूत ग्रन्थ—रामायण, अध्यात्म रामायण, प्रसन्नराघव नाटक, हनुमन्नाटक, भागवत और गीता हैं। रामचरित मानस में राम के उत्कृष्ट चरित वर्णित हैं। इतना ही नहीं, इस ग्रन्थ के भरत, लक्ष्मण, सीता, रावण, हनुमान आदि अलग-अलग महाकाव्यों के नायक हो सकते हैं। मानस का प्रमुख रस शान्त है, परन्तु शृङ्गार वीर, करुण, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र, आदि रसों का भी परिपाक अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। हास्य के तो विविध रूप इस ग्रंथ में प्रकट हुए हैं। शृङ्गार का जो मर्यादित रूप इसमें प्रस्फुटित हुआ है, यह इसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण है। इनके अतिरिक्त विभिन्न भावों का यह भांडार है। तुलसीदास जी अपने वर्णनों द्वारा पाठक या स्रोता के मन पर अधिकार कर लेते हैं और वे जब चाहे हँसा सकते हैं और जब चाहे रुला सकते हैं। 'मानस' चरित्र-प्रधान ग्रन्थ है। इसके पात्र काव्य के रूप में सामने नहीं आते, वरन् ऐसा जान पड़ता है कि हमने जीवन में इसको देखा है।

रामचरित मानस में गोस्वामीजी ने पुराण, नाटक और महाकाव्य तीनों ही शैली और विशेषताओं का समन्वय कर दिया है। कहीं पर उनकी शैली पौराणिक है, कहीं पर नाटकीय और कहीं पर महाकाव्य की-सी गंभीरता, वैचित्र्य और प्रभाव लिये है। पुराण के समान इसका प्रारंभ है, चार-चार कथा संवादों का एक साथ संगठन है। अनेक कथाएँ बीच में आती हैं जो उद्देश्य की सिद्धि कर समाप्त हो जाती हैं। इसके साथ ही साथ घटना-संगठन और क्रमिक

विकास महाकाव्य का-सा है । चारित्रिक महानताएँ, जीवन की विषम समस्याएँ सांस्कृतिक उद्घाटन, महान् घटनाएँ तथा इनके फलस्वरूप गंभीर भाव-प्रवाह चरित्रों और घटनाओं की विशद पृष्ठभूमि प्रकृति और मानव जीवन के विविध रूप सब इस ग्रन्थ को महाकाव्य के गुणों से युक्त करते हैं । संवादों की सजीवता, चरित्र का सूक्ष्म चित्रण, वार्तालाप का चोखापन नाटकीयता के लक्षण हैं । इन तीनों से ओत-प्रोत गोस्वामीजी की कला का मार्मिक प्रभाव है ।

रामचरित मानस, मानव जीवन का महाकाव्य है । इसके द्वारा गोस्वामीजी ने हमारी आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया हैं । राम, सीता, भरत, दशरथ, कौशल्या, लक्ष्मण, हनुमान आदि के त्याग, प्रेम, सेवा और कर्तव्यपूर्ण चरित्र हमारे ईर्ष्या-द्वेष, वैर-संघर्ष से जर्जरित समाज के लिये अमृतमयी नवीन जीवनी-दायिनी औषधि हैं । तुलसी ने मानस की रचना अपने युग की आध्यत्मिक समस्या का समाधान करने के लिए की थी । वह यह है कि ईश्वर साकार है या निराकार ? तुलसी ने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि यह तर्क का विषय नहीं, अनुभव और विश्वास का विषय है । यह निराकार, निर्विकार होते हुए भी सगुण और साकार । अपने विश्वास और आस्था के बल पर हम उसे इस रूप में अनुभव कर सकते हैं । मनुष्य जीवन का प्रमुख ध्येय उसी का साक्षात्कार करना है और इसका सुगम उपाय है भक्ति । तुलसी द्वारा प्रस्तुत, यह हमारी आध्यात्मिक समस्या का हल है ।

रामचरित मानस गोस्वामीजी का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है और इसका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है । भारत के प्रत्येक क्षेत्र में इस ग्रन्थ का प्रचार है । इसके द्वारा भारतीय समाज के आदर्श की अब तक रक्षा हुई है, साथ ही प्रेम और त्याग द्वारा समाज-संगठन का उपदेश मिला है । यह अपूर्व ग्रन्थ है । विश्वसाहित्य में इसकी समता करने वाले ग्रन्थ सुदुर्लभ हैं ।

उपर्युक्त गोस्वामीजी की रचनाओं के संक्षिप्त परिचय थे, यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना एक विशिष्ट उद्देश्य को सामने रख कर पूर्ण की । वे रचनाएँ राम-कथा की पुनरुक्ति नहीं; वरन् रामचरित मानस की पूरक हैं ।

आलोचना-खण्ड

राम-काव्य का विकास और रामचरित मानस

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस को 'नाना पुराण निगमागम-सम्मतम्' लिखा है, तथा अन्य अनेक विद्वानों और लेखकों ने राम-कथा के आधारभूत ग्रन्थों का उल्लेख किया है। जिन्हें देखकर यह धारणा हो सकती है कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती रामचरित-सम्बन्धी साहित्य से अपने रामचरित को संकलित किया है। परन्तु जब हम पूर्ववर्ती राम-साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं तो यह धारणा स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी ने राम के इस रूप, चरित्र और आख्यान के निर्माण में बड़ा परिश्रम किया है। राम का विविध गुणों—शक्ति, शील, सौन्दर्य—से युक्त जो पूर्ण व्यक्तित्व हमें मानस में देखने को मिलता है, वह पूर्ववर्ती किसी भी एक काव्य में नहीं मिलता। समस्त रचनाओं को पढ़कर भी हम राम के सम्बन्ध में वह धारणा नहीं बना पाते, जो तुलसी के मानस-द्वारा बनती है। अतः युग-युग को प्रभावित करने वाली कथा की रचना कर राम के व्यक्तित्व को इतना महान उत्कर्ष और पूर्णता प्रदान करने में तुलसी को बहुत बड़ा श्रेय प्राप्त है। तुलसी का यह कार्य उतने ही महत्व का है जितना कृष्ण के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने में भागवतकार का है, वरन् लोकप्रियता के कारण उससे भी अधिक। सूर आदि कृष्ण-भक्त कवियों से तुलसी की विशेषता केवल इसी बात में अधिक बढ़ जाती है कि इन कृष्ण भक्त कवियों को कृष्ण के चरित्र के लिए भागवत का उत्कृष्ट आधार प्राप्त था, जबकि तुलसी को वैसा पूर्ण आधार प्राप्त न था।

तुलसी के पूर्ववर्ती राम-साहित्य पर दृष्टिपात करते समय सबसे पहले हमारा ध्यान वैदिक साहित्य पर जाता है। वेदों में राम का उल्लेख अवश्य

मिलता है, पर उसे हम दशरथ-पुत्र राम के नाम से सम्बन्धित नहीं कर सकते। ऋग्वेद में राम का नाम असुर राजाओं के नाम के प्रसंग में नीचे लिखे मन्त्र में आया है :—

प्र तद्दु:शीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मद्यवत्सु।
ये युक्तवाय पंच शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्॥[1]

यहाँ पर दु:शीम, पृथुवान, वेन, राम असुर यजमानों के रूप में परिगणित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रसंगों में राम ब्राह्मण के नाम-रूप में हैं। जैसे राम मार्ग-वेय ब्राह्मण तथा राम ओपतस्विनी तथा राम कृतु जातेय आचार्य। निश्चय ही इनका सम्बन्ध मानस के राम से नहीं। वैदिक साहित्य में सीता शब्द का प्रयोग हल से बनी हुई लकीर, कूँड के लिए आया है। सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भी है। यह देवीकरण की प्रवृत्ति वैसी ही है जैसी कि उषा, वरुणा, इंद्र, वन-देवी आदि से। इसके अतिरिक्त सीता का प्रयोग सूर्य-पुत्री के रूप में भी हुआ है। परन्तु इनका रामायण की सीता से सम्बन्ध नहीं दीखता। हाँ, कुछ लोग सीता का हल की लकीर का अर्थ ग्रहण करके सीरध्वज जनक के खेत जोतने से सीता की उत्पत्ति का सम्बन्ध लगाते हैं। इन्हीं आधारों पर कुछ लोग राम और सीता के व्यक्तित्वों को काल्पनिक मानते हुए, रामकथा को प्रतीकात्मक समझते हैं जैसा कि जैकोबी का विचार है। परन्तु वालमीकि का वर्णन यह सिद्ध नहीं करता। दशरथ का नाम वैदिक साहित्य में एक प्रतापी योद्धा राजा के रूप में हुआ है तथा जनक विदेह का उल्लेख विद्वान राजा के रूप में हुआ है। पर विशेष विवरण नहीं। इससे ज्ञात होता है कि राम चरित्र वैदिक ऋषियों को अज्ञात था और अन्य व्यक्तियों के उल्लेख रामकथा के पात्रों से सम्बन्ध नहीं रखते। राम का समय उसके बाद का है।

राम का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण उल्लेख बालमीकि रामायण में ही हुआ है। रामायण का समय संदिग्ध है। कुछ लोग इसका समय ई० पू० ६०० से ४०० तक मानते हैं और कुछ विद्वान् इसे ३०० वर्ष ई० पू० की रचना बताते हैं।

१. ऋग्वेद, नं० १० सू० ९३, मन्त्र १४

बाल्मीकि रामायण के तीन पाठ हैं—पश्चिमोत्तर, पूर्वीय और दाक्षिणात्य। इन तीनों पाठों में कथा की दृष्टि से बहुत कम अन्तर है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि राम-कथा की परम्परा मौखिक थी, लिखित नहीं और उसी परम्परा को लेकर विभिन्न पात्रों का विकास हुआ। इसका संकेत स्वयं वाल्मीकि रामायण में है :—

इक्ष्वाकूणां इदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मानाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ।।३।।[1]

इस प्रकार पहले से प्रचलित रामायणाख्यान को एक कथा-सूत्र में बाँध कर, जिस दिन वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की उसी दिन से राम-गाथा की दिग्विजय प्रारम्भ हुई। अश्वघोष के उल्लेख[2] से पता चलता है कि राम-चरित पहले च्यवन ऋषि ने लिखा जिसे वाल्मीकि ने विशेष काव्य-सौन्दर्य से युक्त किया। वाल्मीकि की मूल-कथा अयोध्याकांड से लेकर युद्ध कांड तक मानी जाती है और बालकांड तथा उत्तर कांड बाद को जोड़े गये प्रक्षिप्त अंश माने जाते हैं। वाल्मीकि के द्वारा लिखित कथा का कुश, लव ने समस्त देश में गा गाकर प्रचार किया था। राम-कथा की लोक-प्रियता इस प्रकार बढ़ी और प्रक्षिप्त अंशों में राम को अवतार रूप में भी प्रतिष्ठित किया। परन्तु मूल वाल्मीकि रामायण में जो रूप है वह एक सदाचारी, पराक्रमी, सुन्दर, सद्गुण सम्पन्न राजा का रूप है। वाल्मीकि रामायण में वैदिक देवता मान्य हैं, पर विष्णु का राम से कोई संबंध नहीं। हाँ, वाल्मीकि रामायण के वर्तमान रूप का निर्माण अवश्य उस समय हुआ जब कि राम की विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

महाभारत में राम की कथा का संकेत कई प्रसंगों में हुआ है। इनमें शोकाकुल युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए मार्कण्डेय ऋषि-द्वारा सुनाया हुआ रामोपाख्यान सबसे प्रमुख है। यह उपाख्यान वाल्मीकि रामायण का आधार लिए हुए है। इसके अतिरिक्त द्रोण, शान्ति और सभा पर्वों में भी षोडशराजीय

---

१. बालकांड, ५ उत्सर्ग २ श्लोक २. बुद्धचरित, १, ४८

उपाख्यान में रामचरित का वर्णन किया गया है। इनमें कुछ का आधार मूल कथा और कुछ का पूर्ण वाल्मीकि रामायण है, क्योंकि वहाँ राम की प्रतिष्ठा अवतार रूप में है।

बौद्ध ग्रन्थ 'जातक' में भी रामकथा के कुछ प्रसंग हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध दशरथ जातक है। डॉक्टर Waver के अनुसार रामकथा का मूलबौद्ध-जातकों में सुरक्षित है। डॉ० जैकोबी ने रामायण की कथावस्तु के दो स्वतन्त्र भाग माने हैं। प्रथम भाग अयोध्या से सम्बन्ध रखता है और वह ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, पर द्वितीय भाग काल्पनिक है। दशरथ जातक के भीतर सीताहरण और राक्षसों के साथ राम के संघर्ष की कथा को छोड़कर शेष सारी मूल कथा है। इसके अनुसार महाराज दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनकी तीन संतानें थीं—राम, लक्ष्मण और सीता। पहली पटरानी के मरने पर दूसरी पटरानी हुई जिससे भरत कुमार नामक पुत्र हुआ। उस रानी ने भरत को राजा होने का वर माँगा। षडयन्त्र के भय से वे राम लक्ष्मण से कहते हैं कि तुम बन चले जाओ और बारह वर्ष के अनन्तर मेरे मरने पर, तुम लौट आना और राज्य सँभालना। पिता की आज्ञा से दोनों अपनी बहन के साथ वन चले गये और हिमालय प्रदेश में आश्रम बनाकर रहने लगे। दशरथ का नौ वर्ष में ही देहान्त हो गया तब उन्हें लेने के लिए भरत गये, पर राम अवधि पूरी किए बिना वापिस आने को तैयार न हुए। भरत उनकी तृण पादुकाओं को लेकर लौट आये। भरत के साथ सीता, लक्ष्मण भी लौट आए। यदि कोई अन्याय करता था तो पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती थीं। अन्त में तीन वर्ष बाद राम भी लौट आये और अपनी बहन सीता देवी के साथ विवाह करके सोलह सहस्र वर्ष तक राज्य करते रहे। कथा का मूल कुछ तो जातकों में है और शेष विस्तार उसके गद्य टीकाकारों ने किया है। आगे चलकर उनमें सीता को राम की बहन नहीं, वरन् स्त्री ही के रूप में माना गया है। कुछ लोगों का विचार है कि मूल कथा उतनी है जितनी की 'दशरथ जातक' में है, परन्तु यह विचार सर्वमान्य नहीं। इन समस्त कथाओं का मूलस्रोत प्राचीन रामकथा का मौखिक रूप ही समझना चाहिए। 'अनामक जातक' में प्रायः पूरी राम-

कथा दी हुई है, पर उसमें राम, सीता आदि नाम नहीं, राजा-रानी आदि के रूप में कथा है।

जैन रामकथा का अपना निजी रूप है। इनमें राम, लक्ष्मण और रावण जैन धर्मानुयायी महापुरुषों के रूप में है। इसका रूप दूसरा ही है। विमल सूरि कृत 'पउम चरिउ' 'पम्प रामायण', गुणभद्र कृत 'उत्तर पुराण' आदि में राम-कथा का उल्लेख है। इसमें सीता को रावण और मन्दोदरी की सन्तान बताया गया है जिसे अनिष्टकारी समझकर मंजूषा में रखकर मिथिला में गड़वा दिया गया था और जो जनक को हल जोतते समय मिली थी।[१] सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर वह नारद से प्रेरित होकर हर ले गया और राम रावण का वैमनस्य शूर्पणखा की नाक काटने पर नहीं, वरन् खरदूषण के पुत्र शंबुक का सिर काटने के कारण होता है। इसमें रावण वध लक्ष्मण करते हैं। राम लक्ष्मण, बनारस के राजा दशरथ के पुत्र थे।

बौद्ध, जैन और पौराणिक हिन्दू रामकथाओं में इस प्रकार हमें अन्तर देखने को मिलता है।

भारतवर्ष में ही नहीं 'रामकथा' विभिन्न रूपों में भारत-खंड के बाहर चीन, तिब्बत, इंडोनेशियन, स्याम, बर्मा आदि देशों में भी प्रचलित हुई। तिब्बती रामायण, चीन का 'दशरथ कथानम' इंडोनेशिया का 'रामायण काकावनि' जावा का 'सेरतराम' कम्बोडिया का 'रेआमकेर', स्याम का 'राम-कियेन' तथा बर्मा का 'यामप्वे' नामक ग्रन्थ रामकथा के ही देश-धर्मकालानुकूल रूप है। इस प्रकार राम-कथा एशिया के विभिन्न देशों में व्याप्त हो गयी थी। साथ ही राम के चरित्र और कथा ने बड़े व्यापक रूप से काव्य को प्रेरणा दी।

पुराणों में भी राम से सम्बन्धित प्रसंग है और उन प्रसंगों के कथानक का आधार प्रमुखतया वाल्मीकि रामायण ही है। अन्तर केवल इतना है कि इनमें विभिन्न मतों के अनुसार उसको विस्तार और महत्व दिया गया है, परन्तु इनमें

---

१. परशुराम चतुर्वेदी : मानस की रामकथा, पृष्ठ ८०, ८१

प्रायः राम अवतार के रूप में ही प्रतिष्ठित हैं। इनके भीतर अवतार-सम्बन्धी भावना दृढ़ मिलती है। अवतार की भावना का कारण कुछ लोग बौद्ध जातकों और कथानकों को मानते हैं[१], जिनमें बुद्ध के व्यक्तित्व में सर्वकालज्ञता की प्रतिष्ठा की गयी। उसी से प्रेरित होकर वैष्णव मतों में भी विष्णु के अवतारों तथा शैवमत में शिव की ब्रह्म रूप में कल्पना की गयी। वैष्णव मत में तो आगे चलकर बौद्ध को स्वयं दशावतारों में से एक अवतार मान लिया गया। सबसे पहले विष्णु के छह अवतार माने गये, परन्तु आगे चलकर नारायणी और विष्णु संहिताओं में अवतारों की संख्या दस हो गयी और शक्ति का भी सम्बन्ध जुड़ गया। छठीं शताब्दी ईसवी में राम ब्रह्म के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और राम-काव्य के विकास का प्रारम्भ हो चला था। भागवत-पुराण, योग वासिष्ठ, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों में राम के चरित्र का माहात्म्य प्रकट हुआ है और शक्ति और ऐश्वर्य का वर्णन है। अध्यात्म रामायण में राम को पूर्ण परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया जिसका उद्देश्य रामभक्ति प्रचार है। इसमें पहली बात तो यह है कि राम से रावण जान बूझकर इसलिए वैर करता है कि उनके हाथों मृत्यु लाभ कर वह बैकुण्ठ प्राप्त करे और दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सीता जिन्हें रावण हर ले जाता है, वे वास्तविक सीता नहीं, वरन् माया रूप सीता हैं। 'अध्यात्म रामायण' में आयी अनेक स्तुतियाँ अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा करती हैं।

इसके अतिरिक्त राम के चरित्र और कथानक ने अनेक संस्कृत-काव्यों को भी प्रेरणा दी। इन काव्यों में महत्वपूर्ण हैं—कालिदास कृत रघुवंश, प्रवरसेन कृत रावण वध, कुमारदास कृत जानकी हरण, क्षेमेन्द्र कृत रामायण मंजरी, दशावतार चरित, भट्टिकाव्य, आदि। इनमें प्रायः वाल्मीकि रामायण का आधार ही लिया गया है। रामकथा के आधार पर संस्कृत में अनेक नाटक भी रचे गये और इनमें भी प्रमुखतया आधार वाल्मीकि रामायण का ही है। इन नाटकों में

१. जे० एन० फर्कुहर—'एन आउटलाइन ऑफ रिलीजस लिट्रेचर ऑफ इंडिया', पृ० १८४

प्रसिद्ध—भास कृत प्रतिमा और अभिषेक, भवभूत कृत महावीर चरित, उत्तर राम चरित, राजशेखर कृत बालरामायण, दिङ्नाग कृत कुन्दमाला, मुरारि कृत अनर्घ्यराघव, जयदेव कृत प्रसन्नराघव, हनुमान कृत महानाटक या हनुमन्नाटक है। इनमें राम के जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है।

संस्कृत में ही नहीं, रामकथा से सम्बन्ध रखनेवाले काव्य भारत की अन्य भाषाओं में लिखे गये—'तमिल रामायण', तेलुगु की 'द्विपाद रामायण' या 'रंगनाथ रामायण', मलयालम की 'इराम चरित', कन्नड की 'तोरावे रामायण', 'काश्मीरी रामायण', बंगला की कृति 'वासीय रामायण' तथा रघुनंदन गोस्वामी-कृत 'रामायण', उड़िया की 'जगन्मोहन रामायण' या 'दांडि रामायण', 'विलंका रामायण', विचित्र रामायाण' मराठी की 'भावार्थ रामायण' तथा 'रामविजय', गुजराती की 'रामविवाह' और 'रामबाल चरित', आसामी की 'विजय' एवं गीति रामायण' आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।[१] इस समस्त साहित्य में प्राप्त कथानक या तो वाल्मीकि रामायण के आधार पर है अथवा लोक-परंपरा द्वारा पहुँची हुई रामकथा का मौखिक रूप है। मुद्रण व्यवस्था न होने पर भी रामकथा का इस प्रकार दूर-दूर प्रचार हुआ, यह राम के महत्व और लोक-प्रियता का संकेत करता है।

इग ग्रन्थों में आये विवरणों और चरित्र-चित्रण से यह स्पष्ट है कि जो रूप राम का इनमें स्पष्ट हुआ है, वह तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में आये स्वरूप के समान पूर्ण नहीं। बहुतों में तो एकांगी चित्र हैं और बहुतों में वाल्मीकि रामायण में चित्रित उदात्त चरित्र, पूर्ण रीति से गृहीत नहीं हो पाया जिन ग्रंथों में राम का चरित्र विशेष निखरा है वे—वाल्मीकि रामायण, भागवत, रघुवंश, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक, उत्तर रामचरित तथा प्रसन्न राघव नाटक हैं। इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग पढ़ने पर तथा सामूहिक रूप से सब को हृदयंगम करने पर भी राम के उस पूर्ण स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं होता, जो

१. विशेष विवरण के लिए देखिए—डॉ० कामिल बुल्के : रामकथा, अध्याय, ११

रामचरित मानस में प्रकट हुआ है। इसलिए रामकाव्य के भीतर तुलसी-द्वारा 'रामचरित मानस' में प्रतिष्ठित राम के स्वरूप की अपनी विशेषता है। तुलसी ने राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनकी यह प्रतिष्ठा पूर्ण होते हुए भी प्रामाणिक है, क्योंकि उसका अंगप्रत्यंग उन्होंने पूर्ववर्ती किसी न किसी ग्रन्थ से लिया है। उन्होंने रामकथा के विभिन्न अंगों और रूपों को पूर्ववर्ती तथा समकालीन राम साहित्य में प्राप्त कथानकों से चुन-चुन कर सँवारा और सजाया था। अत: 'रामचरित मानस' की विशेषता उसकी पूर्णता, प्रामाणिकता तथा सुन्दरता में है जो किसी ग्रन्थ में एक साथ देखने को नहीं मिलतीं।

हिन्दी भाषा में भी 'रामकाव्य' की परम्परा है। तुलसी के पूर्व रामकाव्य लिखने वाले कवि भूपति थे जिन्होंने सं० १३४२ में 'रामचरित रामायण' लिखी थी। इसका केवल उल्लेखमात्र ही १९०६ की खोज रिपोर्ट में मिलता है अन्य विवरण उपलब्ध नहीं। तुलसी के समकालीन मुनिलाल कवि ने 'रामप्रकाश' नामक काव्य में रीतिशास्त्र के आधार पर रामकाव्य लिखा। समकालीन अन्य कवियों में उल्लेखनीय—नाभादास, केशवदास और सेनापति हैं। नाभादास जी के रामभक्ति सम्बन्धी कुछ सुन्दर पद हैं। केशव की रामचन्द्रिका राम के जीवन को लेकर लिखा गया महाकाव्य है जिसका प्रमुख आधार हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव नाटक है। रामचन्द्रिका में केशवदास की वृत्ति स्वयं ही तन्मय नहीं हो पायी, अत: 'मानस' से इसकी तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता। सं० १६६७ में 'रामायण महानाटक' को प्राणचंद्र चौहान ने लिखा जिसमें संवादरूप में राम की कथा है। इसी प्रकार का हृदयराम का सं० १६२३ लिखा हनुमन्नाटक है जो संस्कृत के नाटक के आधार पर है। इसी प्रकार अन्य छोटे-मोटे काव्य राम के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले लिखे गये। इन राम-काव्यों में हनुमन्नाटक का तथा कृष्ण काव्य का प्रभाव पड़ा। परिणाम-स्वरूप राम और सीता के श्रृङ्गार तथा विलास-चेष्टाओं का भी वर्णन हुआ। ये 'रामचरित मानस' के आदर्श से भिन्न हैं। १८ वीं शताब्दी के अन्त में रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह ने राम-चरित से सम्बन्धित अनेक काव्य लिखे जिनमें से छह का उल्लेख मिलता

है और उनमें भी 'आनंद रघुनन्दन' काव्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस काल में अन्य रचनाएँ सामान्य महत्व की हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरिधरदास ने भी राम से सम्बन्धित कतिपय ग्रन्थों का प्रणयन किया। परन्तु तुलसी के उपरांत राम साहित्य पर कुछ बहुत महत्वपूर्ण नहीं लिखा गया, जिसका प्रमुख कारण यही जान पड़ता है कि तुलसी ने अपने 'मानस' के भीतर राम के चरित्र को जिस पूर्णता से प्रतिष्ठित किया उस पूर्णता के सामने अन्य लोगों के प्रयत्न महत्वहीन सिद्ध होते हैं।

आधुनिक युग में भी राम की कथा को लेकर कुछ रचनाएँ हुई जिनमें विशेष प्रसिद्ध हैं—रामचरित चिन्तामणि (रामचरित उपाध्याय कृत), वैदेही बनवास (हरिऔध कृत), संकेत और पंचवटी (मैथिलिशरण गुप्त कृत), तथा कौशलकिशोर और साकेत संत (बलदेवप्रसाद मिश्र कृत)। इनमें सबसे महत्व-पूर्ण कृति 'साकेत' है जिसमें राम के मानवोचित गौरव को स्पष्ट किया गया है तथा उनके चरित्र की आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल व्याख्या है। राम-चरित के बीच लक्ष्मण और उर्मिला के चरित्रों का महत्व चित्रित करना कवि का प्रमुख ध्येय है।

तुलसी के परवर्ती और पूर्ववर्ती उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों को सामने रखकर भी जब हम विचार करते हैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन ग्रन्थों में किसी भी एक में 'रामचरित मानस' की सी पूर्णता, व्यापकता, प्रभावात्मकता और गम्भीरता एक साथ विद्यमान् नहीं मिलती। अतः रामकाव्य में इस ग्रंथ का अद्वितीय महत्व है।

तुलसी ने अपने रामचरित मानस के निर्माण में अनेक शास्त्रों, पुराणों, धार्मिक तथा काव्य-ग्रन्थों का आधार ग्रहण किया है और इस बात को स्वयं ही उन्होंने प्रारंभ में स्पष्ट भी कर दिया है। अनेक विद्वानों ने उनकी उक्तियों का मूल संस्कृत के ग्रन्थों में खोजा है। परन्तु तुलसीदास ने ऐसा जान-बूझ कर किया है। अनेक ग्रन्थों से पुष्ट होना वे अपने ग्रन्थ का गौरव मानते हैं। इसी से मानस 'छहो शास्त्र सब ग्रंथन को रस' कहा गया है। परन्तु विभिन्न ग्रंथों से राम के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री को लेकर भी तुलसी ने जो हमें दिया, वह

अनुपम है। उन्होंने संसार के बीच राम के जिस आदर्श चरित्र को प्रतिष्ठित किया है तथा जिस समाज की झलक हमें दिखायी है, वह समस्त विश्वसाहित्य में दुर्लभ है। तुलसी के पूर्ववर्ती और परवर्ती लिखे गये अनेक ग्रन्थों में से किसी में भी राम का वह रूप हमें देखने को नहीं मिलता जो मानस में है। वाल्मीकि रामायण, वायु-पुराण, भागवत, अध्यात्म रामायण, प्रसन्नराघव नाटक, हनुम-न्नाटक, उत्तर-राम चरित आदि आधार-भूत ग्रन्थों की सामग्री, 'मानस'-निर्माण की कच्ची सामग्री है जिसके आधार पर तुलसीदास ने एक अलौकिक, दिव्य, भव्य और परमोपयोगी भवन का निर्माण किया—जिसका रचना-कौशल कलाकार की प्रतिभा, और पूर्ववर्ती सामग्री के उपयोग की चतुरता को स्पष्ट करता है। अतः प्राचीन सामग्री को भी अपनी प्रतिभा और आदर्श के निजी साँचे में ढाल कर जीवन का परिपूर्ण चित्र प्रदान करने में तुलसी की मौलिकता अक्षुण्ण है।

तुलसी का काव्य-दर्शन

काव्यशास्त्र के तीन अंग होते हैं—१. काव्य-दर्शन, २. कविशिक्षा और ३. काव्य-शिल्पविधि। गोस्वामी तुलसीदास जी काव्याचार्य के रूप में हमारे सामने नहीं आते; अतएव काव्य-शिल्पविधि और कविशिक्षा संबंधित उनके विचार उनके ग्रन्थों में नहीं मिलते। कवि का रूप उनका प्रमुख नहीं था, कवि-शिक्षा सम्बन्धी बातों की आशा करना उनसे व्यर्थ है; परन्तु वे जीवन और जगत् के अनुभवों में काफी गहरे उतरे थे इस कारण से काव्य-दर्शन (poetic philosophy) अथवा काव्यादर्श (concept of poetry) से सम्बन्धित उनकी उक्तियाँ उनका दृष्टिकोण भलीभाँति स्पष्ट करती हैं। यही विभिन्न कृतियों में प्राप्त एवं उक्तियों में परिव्याप्त गोस्वामीजी के काव्य-दर्शन सम्बन्धी विचारों का अध्ययन और विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

काव्य के स्वरूप पर प्राप्त उनके विचारों में उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी था। काव्य एक सीमित एवं कुछ विद्वानों द्वारा ग्राह्य वस्तु ही नहीं है, वरन् वह सर्वोपयोगी वस्तु है। उनका कथन है—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

कीर्ति अर्थात् यश या सत्कार्यों की ख्याति; भनिति अर्थात् उक्ति या काव्य और ऐश्वर्य अर्थात् संपत्ति वही भली है, जिससे लोक-कल्याण हो, जैसे कि गंगा जी जो अनेक प्रकार से सभी का हित करती हैं। यहाँ पर निश्चयत: तुलसीदास का मन्तव्य यही है किसी कुएँ, झील या ताल के पानी का सीमित उपयोग है, एकक्षेत्रीय हित ही उससे होता है; परन्तु गंगा नदी का जल अनेक प्रकार से सर्वोपयोगी है। यही सत्काव्य की भी विशेषता है। संस्कृत या केवल विद्वद्वर्ग की भाषा में लिखे काव्य का भी सीमित उपयोग है; अत: काव्य को बहुजनोपयोगी बनाने के हेतु उसे लोकभाषा में लिखना चाहिए। तुलसी ने काव्य को सुरसरि माना है। साधारण नदी नहीं, जो ग्रीष्म में सूख जाय; वरन्

गंगाजी के समान काव्य को होना चाहिए जिसमें प्रवाहित भाव-विचार की धारा युग-युग तक जीवन को सरस बनाती हुई बहती रहे। काव्य किसी क्षुद्र, सामयिक या सीमित भाव या विचार को लेकर महान नहीं हो सकता, उसमें चाहे कितना उक्ति-वैचित्र्य हो और चाहे वह किसी की उत्तम से उत्तम और सुन्दर भाषा में लिखा गया हो।

असन्दिग्ध रूप से तुलसी वस्तु या वर्ण्य विषय को महत्व देते हैं, भाषा या शैली आदि को नहीं। यद्यपि कबीर के समान उन्होंने संस्कृति की अपेक्षा भाषा को अधिक या विशिष्ट महत्व-देने की चेष्टा नहीं की; क्योंकि वे उसे देववाणी मानते थे और उसके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी; परन्तु उन्होंने काव्य की किसी विशिष्ट भाषा को कोई महत्व प्रदान नहीं किया उन्होंने स्पष्ट लिखा है

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच॥

और— हरिहर जस सुर नर गिरहुँ, बरनहिं सुकवि समाज।
हाँड़ी, हाटक घटित चरु, राँधे स्वाद सुनाज॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति,गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

यहाँ पर तुलसी का दृष्टिकोण स्पष्ट है। भाषा साधन मात्र है और साधन जितना ही सुलभ और सुगम हो उतना ही अच्छा है। उससे साध्य के प्रति अधिक से अधिक ध्यान रहता है। काव्य में भाषारूप साधन यदि दुरूह या बोझिल हो गया, तो फिर 'हरिभजन के उद्देश्य में कपास ओटना' ही रह जाता हैं। ध्यान भाषा की दुरूहता और जटिलता में उलझ जाता है और वास्तविक उद्देश्य पीछे पड़ जाता है। यदि कहें कि काव्य के लिए गँवारू भाषा उपयुक्त नहीं, तो उसका भी उत्तर तुलसीदास जी यह देते हैं, कि यह वर्ण्य विषय और भाषा के प्रयोग पर निर्भर है। भाषा का कोई दोष नहीं; जैसा कि ऊपर के दूसरे दोहे से स्पष्ट है—

अपने उपर्युक्त दृष्टिकोण को तुलसी ने सिद्धान्त रूप में इस प्रकार रखा है—

सरल कबित कीरति बिमल, सुनि आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करैं बखान॥

यहाँ वर्ण्य विषय या चरित्र की उच्चता का प्रतिपादन है। विषय की उच्चता का वर्णन, सच्चे निर्मल चरित्र वाले व्यक्तियों का चित्रण, सामाजिक हित के लिए महत्व रखता है। यह लोक को उच्च विचार रखने और उच्च जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। इसे कोई भी स्वीकार नहीं करेगा कि समाज में निम्न कोटि का जीवन बिताया जाय और दूषित चरित्र आदर्श ग्रहण किया जाय। इस भावना को लेकर तुलसीदास को एकांगी और आदर्शवादी मात्र कहना उचित नहीं, वरन् इसका निष्कर्ष यही है कि उनका दृष्टिकोण सामाजिक था। सभी कार्यों को वे सामाजिक पृष्ठभूमि में देखते थे। अतः काव्य का वर्ण्य विषय भी उच्च और निर्मल होना चाहिए। ऐसे काव्य का सुजान आदर करेंगे। परन्तु, निर्मल चरित्र का सरल-शैली में वर्णन करना तो सरल नहीं। गोस्वामीजी ने लिखा है—"सो न होय बिनु विमल मति" अर्थात् इस प्रकार का काव्य बिना निर्मल या स्वच्छ प्रतिभा के नहीं हो सकता।

यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि तुलसी तो स्वान्तःसुखाय काव्य लिखने वाले व्यक्ति हैं। अतः उनको सुजानों के आदर की क्या चिन्ता थी? और स्वान्तःसुखाय लिखने वाले व्यक्ति का सामाजिक दृष्टिकोण से क्या सम्बन्ध? वास्तव में तुलसी का 'स्वान्तःसुखाय' शब्द व्यङ्गपूर्ण है जिसका तात्पर्य यह है कि बड़े-बड़े लेखक और कवि उच्च रचना और समाज का नवनिर्माण एवं परिष्कार करने तथा सर्वश्रेष्ठ काव्य लिखने का संकल्प करके लेखनी उठाते हैं और परिणाम कुछ नहीं होता। यदि उसमें कुछ तत्त्व है, तो इस प्रकार है संकल्प द्वारा आत्मप्रचार की कोई आवश्यकता नहीं; वह रचना अपने आप अपना प्रभाव डालेगी। अतः उन्होंने इस प्रकार का कोई महान् संकल्प प्रस्तावित नहीं किया। हाँ, उच्च और निर्मल चरित्र का चित्रण उनका ध्येय अवश्य है, जिसे वह पूरा करना चाहते हैं और जिसका पूरा करना वे सरल नहीं समझते। परन्तु स्वान्तःसुखाय लिखते हुए भी वे सज्जनों और विद्वानों द्वारा अपनी

कृतियों के सम्मान की आकांक्षा रखते हैं। उनकी सभी कवियों से याचना है—

होउ प्रसन्न देउ बरदानू। साधु समाज भनहि सम्मानू॥

इसके अतिरिक्त भी काव्य को वे वैयक्तिक अर्थात् केवल एक व्यक्ति या कवि तक सीमित वस्तु नहीं मानते वरन् उसके सामाजिक महत्व और प्रचार पर विश्वास रखते हैं। उनका सिद्धांत है—

मणि माणिक मुक्ता छबि जैसी।
अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तन पाई।
लहहि सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेइ सुकबि कबित बुध कहईं।
उपजहिं अनत अनत छबि लहईं॥
जो प्रबन्ध बुध नहीं आदरहीं।
सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥

इस प्रकार तुलसी का काव्य-प्रयोजन और उसकी कसौटी दोनी ही स्पष्ट हो जाते हैं। काव्य-प्रयोजन तो सामाजिक हित है, पर वह केवल कवि के द्वारा कह देने मात्र से संपन्न नहीं हो जाता, उसका यह पक्ष तो समाज में उसके प्रचार और विद्वानों द्वारा उसके आदर के साथ सिद्ध होती है। मणि कैसी भी अच्छी क्यों न हो, उसका मूल्य और महत्व खान में नहीं, पारखियों के पास जाकर ही उसका महत्व ज्ञात होता है और विशेषज्ञों द्वारा प्रतिष्ठित होने पर फिर सर्वसाधारण भी उसे मूल्यवान वस्तु समझते हैं। और यदि विद्वानों और सर्वसाधारण दोनों की ही दृष्टि में उसकी विशेषताएँ अलग-अलग प्रतिभासित और गृहीत हुईं, तो फिर उसका कहना ही क्या ? वह तो सर्वश्रेष्ठ है। तुलसी का अपना काव्य इसी कोटि का है, यह वे नहीं कहते। विद्वान् तथा साधारण सभी जन स्वयं उसे श्रेष्ठ कहते हैं।

काव्य की उत्पत्ति—यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार के काव्य की उत्पत्ति कैसे होती है ? तुलसीदास का काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बड़ा ही स्पष्ट मत इस प्रकार है—

हृदय सिन्धु मति सीप समाना।
स्वाति सारदा कहैं सुजाना।।
जो बरषइ बर बारि बिचारू।
होहिं कबित मुक्तामनि चारू।।

हृदय समुद्र है। जिस प्रकार समुद्र विशाल और अगाध होता है, अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी सरिताओं का जल उसमें गिरता रहता है और छोटी-बड़ी अनेक बीचियाँ, ऊर्मियाँ और लहरें उसमें उठती रहती हैं उसी प्रकार हृदय में जीवन के अनेक अनुभव और भाव भरे रहते हैं। उन भावनाओं के बीच बुद्धि इधर-उधर घूमती रहती है, जैसे समुद्र में सीपी। यह मति या बुद्धि प्रतिभा-स्वरूपिणी है। इस प्रतिभा रूपी बुद्धि में—जो अनेक अनुभव और भावनाओं से ओतप्रोत है—जब कोई नवीन सद्विचार आ जाता है; तो कवित्व रूपी मोतियों का जन्म होता है। यहाँ पर कविता के कोई अलौकिक कृत्य होने का विश्वास प्रकट नहीं है। अलौकिकता का समावेश केवल स्वाति-सारदी के रूपक से होता है जो वर-वारि रूपी विचार की प्रेरक हैं। विचार जाग्रत होने की क्रिया को हम चाहे अलौकिक या अदृश्य प्रेरणा माने या भौतिक परिस्थितिगत क्रिया; परन्तु भावनाओं के समुद्र के बीच प्रतिभारूपी बुद्धि के अन्तर्गत जब वह विचार पड़ेगा, तभी कवित्व का जन्म होगा, यह तुलसी का काव्योत्पत्ति का सिद्धान्त है। सौन्दर्यशास्त्र का प्रसिद्ध मनीषी वेनेदेतो क्रोचे भी काव्य या कलाओं को कल्पना और भावना द्वारा प्राप्त ज्ञान मानता है; केवल बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान नहीं। कल्पना का तुलसी की सुमति के अन्तर्गत समावेश माना जा सकता है। तुलसी ने काव्यांगों का प्रत्यक्ष विवेचन नहीं किया है, परन्तु उनकी धारणा में संस्कृत काव्याचार्यों के काव्यांग-विवेचन से एक अधिक विशिष्ट बात देखने को मिलती है। तुलसी ने यद्यपि काव्य-शास्त्रीय ढङ्ग से काव्य की आत्मा खोजने और स्पष्ट प्रतिपादित करने का प्रयत्न नहीं किया, पर अपने ढङ्ग से उन्होंने स्पष्ट किया है कि सत्य काव्य की आत्मा है, परब्रह्म परमात्मा सत्यस्वरूप है, अतः उसका वर्णन उनकी दृष्टि से आवश्यक है। कविता को यदि कामिनी माना जाय और शब्द-अर्थ को शरीर, गुणों को लज्जादि गुण और अलंकारों को

आभूषण, तो उसके लिए भक्तिभावना वस्त्र या साड़ी के समान है जिसके बिना शृङ्गार-प्रदर्शन व्यर्थ है। उनकी उक्ति है—

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू।
सकल कला सब बिद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृति नाना।
छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥

भनिति मोरि सब गुन रहित, बिश्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिनके बिमल बिवेक॥

उपर्युक्त पंक्तियों में तुलसीदास ने 'कबित विवेक' से काव्य-शास्त्र (या काव्य-शिल्प विधि) के विविध अंगों का संकेत किया है। शब्द, अर्थ, अलंकार, छन्द, प्रबन्ध-मुक्तकादि, भेद, भाव, रस, गुण और दोष आदि जो अंग हैं उनके ज्ञान को अपने में तुलसीदास जी अस्वीकार करते हैं। वे इनके फेर में पड़े बिना ही कोरे कागज पर स्वानुभूत सत्य लिखकर प्रकट कर रहे हैं। सभी जानते हैं कि उनके अलंकृत सत्य को प्रकट करने वाला ग्रन्थ 'रामचरित-मानस' समस्त काव्य-विवेक को अपने कलेवर में छिपाये हैं। अतः उन्होंने उस सत्य को पकड़ा जिसका सहज स्वाभाविक कथन मात्र काव्य बन जाता है।

तुलसी का सत्य रामनाम के रूप में प्रकट हुआ। यह सत्यरूप रामनाम अथवा भक्ति-भावना काव्य का सार है। यह राम या रामनाम की भक्ति है जो अलौकिक आलंबन को लेकर चलने वाली किन्तु रसस्वरूप है। मधुसूदन सरस्वती का मत है कि जिस प्रकार लौकिक आलंबन से सुख का आधार सामाजिक का हृदय हो जाता है, वैसे ही अलौकिक आलंबन से भी रस के सुखद स्वरूप की जाग्रति होती है। इस अलौकिक आलंबनस्वरूप भक्ति रस का प्रतिपादन काफी

हुआ है। अतः भक्ति रसस्वरूप है और यदि इस रसस्वरूपा रामनाम-भक्ति को तुलसी पुराण, श्रुति और साथ ही काव्य का भी सार मानते हैं, तो वे आचार्य-परम्परा से प्रमाणित ही हैं, भक्ति-रसाचार्यों से तो पूर्णतया सम्मत हैं। इसी क्रम में ही उन्होंने कुछ अधिक व्यापक एवं व्यावहारिक काव्य-दृष्टि से लिखा है।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुराण श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी।
उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

इसके आगे तुलसी प्रतिपादित करते हैं कि वास्तव में इस राम नाम की भक्तिभावना के बिना अर्थात् सत्यरूप ईश्वर के प्रति प्रेमभाव के बिना चमत्कारपूर्ण काव्य भी सार्थक नहीं है—

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ॥
रामनाम बिन सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी।
सोह न बसन बिना नर नारी॥
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी।
रामनाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही।
मधुकर सरिस सन्त गुनग्राही॥

यहाँ पर उन्होंने भक्ति के लिए परम्परा से आये काव्य-रूपक में एक विशिष्ट और अविच्छिन्न या अनिवार्य स्थान खोज निकाला है। कविता-कामिनी के शरीर, अलंकार, गुण-दोषों और यहाँ तक कि आत्मा की चर्चा तो अनेक आचार्यों ने की, पर वस्त्र पहिनाना सभी भूल गये। उन्होंने कविता रूपी स्त्री के लिए रामनाम को वसन रूप माना। वसन से युक्त नारी जिस प्रकार अन्य अलंकरणों के अभाव में भी स्वाभाविक एवं सहज शोभा को प्राप्त होती है; वैसे ही काव्य-विवेक से हीन तुलसी का काव्य भी भक्तिभावना से

युक्त होने के कारण सहज ही प्रिय हो गया। इसी भाव को स्पष्ट करने वाली पंक्तियाँ हैं—

जदपि कबित रस एकौ नाहीं।
राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी।
रामकथा जग मंगल करनी॥
प्रिय लागिहि अति सबहिं मम, भनित राम जस संग।
दारु बिचार कि करइ कोउ, बन्दिअ मलय प्रसंग॥

इस प्रकार भक्तिभावना को तुलसी ने कविता में सार वस्तु माना है। एक और युक्ति से इस सिद्धान्त को सिद्ध करते हुए और क्षुद्र प्राकृत चरित्रों का गुण-गान करने के विरोध में अपने भाव प्रकट करते हुए तुलसी ने लिखा है—

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई।
सुमरत सारद आवति धाई॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाये।
सो स्रम जाय न कोटि उपाये॥
कवि कोविद अस हृदय बिचारी।
गावहिं हरिजस कलिमल हारी॥
कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥

इस कथन से काव्य के सम्बन्ध में तुलसी की उच्च और पवित्र धारणा व्यक्त होती है। यह सत्य है कि यह दृष्टिकोण आज के यथार्थवादी युग में विचित्र जान पड़ता है; परन्तु सामाजिक मनोविज्ञान की दृष्टि से यह दृष्टिकोण समाज का हित करने वाला है। तुलसी ने यह नहीं लिखा कि प्राकृत या लौकिक व्यक्ति का चित्रण या वर्णन ही न होना चाहिए। उन्होंने स्वयं ही अपने 'रामचरित मानस' में मन्थरा, कैकेयी, केवट, सुग्रीव आदि के चरित्र यथार्थ लोकभूमि पर चित्रित किये हैं; अतः उनका तात्पर्य यह नहीं है कि काव्य में स्वर्ग लोक के अलौकिक व्यक्तियों का वर्णन ही करना चाहिए, लोक

के व्यक्तियों का नहीं। वास्तव में उनका अभिप्राय उस समय की चारण वृत्ति से है जिसमें कवि अपने आश्रयदाता के धन और वैभव की प्राप्ति की अभिलाषा में उनकी झूठी-सच्ची प्रशंसा में तन्मय न हो सकता था। अतः उन्होंने यह सिद्धान्त बनाया कि गुणगान करना है तो अलौकिक चरित्र वाले परमात्मा का ही गुणगान करना चाहिए। उनके समकालीन और पूर्ववर्ती अनेक कवि लौकिक व्यक्तियों की झूठी-सच्ची प्रशंसा कर ही गये थे। चन्द, गंग, केशव आदि इनमें अग्रगण्य हैं। केशव ने तो इन्द्रजीत को इन्द्र ही बना दिया था और प्रवीणराय को राम और शारदा; उदाहरणार्थ—

> रतनाकर ललित सदा, परमानंदहिं लीन।
> अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रबीन।।
> राय प्रवीण कि शारदा, शुचि रुचि रंजित अंग।
> वीणा पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग।।

निश्चय है कि इन अनेक व्यक्तियों के सम्बन्ध में लोक की धारणा ऐसी न थी। अतः उन्होंने प्राकृत जनों के गुणगान का निषेध किया है; उनके वर्णन का नहीं।

इस निषेध का एक और भी कारण है। भरत और राम जैसे कितने व्यक्ति हैं, जो राज्य-त्याग सकते हैं और अपनी प्रशंसा पर सकुचाते हैं। प्राकृत जनों का तो अपनी प्रशंसा से ऐसा अहंभाव जाग्रत होता है कि वे उसके आवेश में न्याय-अन्याय सब कुछ कर सकते हैं। इसलिए कवित्व जैसे प्रभावशाली माध्यम का उपयोग सोच-समझ कर करना चाहिए। इसी को खतरे से बचाने के लिए उन्होंने कवि के लिये यह नियम स्वीकार कर लिया कि प्रकृत जनों का गुणगान ही न किया जाय। इसके साथ ही साथ; जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है तुलसी भक्ति को ही काव्य की आत्मा या सार मानते थे। निश्चय है कि लौकिक आलम्बन को स्वीकार करने पर भक्ति प्रशस्ति हो जायगी और उसका उच्च उदात्त रूप प्रस्फुटित नहीं हो सकता जिसकी सरस माधुरी में एक साथ लाखों मनुष्यों के हृदयों में स्निग्धता और आनन्द का संचार हो सके। इसलिए कविता में गुणगान का विषय उनके

विचार से ईश्वर या ईश्वरीय अथवा अलौकिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही होना चाहिए, जिसे दूसरे शब्दों में हम ईश्वर का अवतार कह सकते हैं, सामान्य प्राकृत जन नहीं।

तुलसीदास भक्ति को जीवन का मूल तत्व या सार मानते हैं। इस भक्ति की दो अवस्थाएँ होती हैं—साधना की और सिद्धि की। सिद्धि की अवस्था की पहचान ईश्वर का अनुग्रह है। इस अवस्था की भक्ति ही भक्त का साध्य है। जिस प्रकार उन्होंने लौकिक जीवन में यह कह भक्ति को सार बतलाया कि—

बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुर कह्यो रामभजन नीको, मोंहि लगत राज डगरो सो।।

उसी प्रकार काव्य के क्षेत्र में भी वे भक्ति से प्राप्त ईश्वर की कृपा को ही सर्वस्व मानते है। यद्यपि उनका विचार है कि सरस्वती जब कृपा करती है तभी स्वाती के बूँदों के रूप में सुविचार मति रूपी सीप में बरसते हैं और कविता रूपी मोती की उत्पत्ति होती है, फिर भी वाणी कृपा किसी की प्रेरणा से ही करती है, यह बात तुलसीदास स्पष्ट रीति से प्रतिपादित करते हैं। उनका कथन है—

सारद दारुनारि सम स्वामी।
राम सूत्रधर अन्तरजामी।।
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी।
कवि उर अजिर नचावहिं बानी।।

इस प्रकार वाणी की कृपा, जैसी तुलसी कवि के लिए आवश्यक मानते हैं, भक्ति से ही प्राप्त होती है। हिन्दी काव्य के प्रसंग में इस कथन द्वारा एक बहुत बड़ा रहस्य स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत बहुत से ऐसे सन्तकवि हैं, जो बिल्कुल निरक्षर थे और उनको कोई कविता की शिक्षा भी नहीं मिली और न संस्कार या प्रवृत्ति ही थी। इनमें कबीर का नाम अग्रगण्य है जिन्होंने स्वयं ही कहा है—'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ'। साथ ही कवि उनकी दृष्टि में बड़ा ही हेय व्यक्ति है—(यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह कवि सामान्य धारणा का कवि है, तुलसी की धारणा का

कवि नहीं) । इसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही कहा है—"कबी कबीने कविता मूये कापड़ी केदारौं जाई ।" अतः महात्मा कबीर की वृत्ति भी कवि बनने को नहीं थी । यदि हम आचार्य दण्डी का यह सिद्धान्त भी स्वीकार करें कि—

न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणनुबन्धिप्रतिभानमुत्तमम् ।
श्रुतेन यत्नेन वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव किमप्यनुग्रहम् ।

जिसके अनुसार अभ्यास और प्रयत्न से वाणी की कृपा होती है, फिर भी इसके लिए संस्कार की आवश्यकता है । ये संस्कार भक्ति के द्वारा स्वतः बन जाते हैं । इसी से जितने भी पहुँचे हुए भक्त हैं, वे हमारे सामने प्रायः कवि-रूप में आते हैं । आधुनिक युग में भी महर्षि श्री अरविन्द के लिए यह सत्य है और अन्य भाषाओं के रहस्यवादियों के लिए भी जिनकी रहस्योक्तियाँ स्वयं काव्य के रूप में हमारे सामने प्रकट हुई हैं । वैदिक ऋषि-मुनियों के भी ऐसे अनुभव काव्यात्मक ही हैं । इस प्रकार तुलसी के काव्य-दर्शन में भक्ति का तत्व प्रधान है । तुलसी के अन्तर्गत स्वयं भी कवि-प्रतिभा का स्फुरण भक्ति का ही परिणाम है—

शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी ।
रामचरित मानस कवि तुलसी ।।

इनकी उक्तियों में कवि और काव्य के वास्तविक रूप का भी संकेत मिलता है । कवि की उक्ति को वे सत्य-गर्भित मानते हैं । स्वयं वे याचना करते हैं—

सपनेहु सांचेहु मोहिं पर, जौ हर गौरि पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ ।।

अतः कवि को सत्य का चित्रण करना ही अभीष्ट है । काव्य में वर्णित वस्तु सत्य हो; असत्य न लगे यह आवश्यक है । यह बात दूसरी है कि कवि का सत्य दार्शनिक या वैज्ञानिक के सत्य से भिन्न होता है । कवि तो सत्य को सजीव और साकार रूप में चित्रित करता है । सत्य-चित्रण की इसी सिद्धि के लिए उसे शब्द और अर्थ की साधना करनी पड़ती है । शब्द और अर्थ का ही तो कवि के पास बल है और उसके पास कोई शक्ति नहीं; परन्तु यह शब्द और अर्थ की शक्ति जो प्रभाव डालती है, वह प्रभाव और कोई शक्ति डाल भी नहीं सकती । इसी शक्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन ने लिखा है—

'Poet's speech is thunder, his thought is law, his words are universally intelligible as the plants and animals', कवि की इस शक्ति को तुलसी बड़ी नम्रता से स्वीकार करते हैं—"कविहिं अरथ आखर बल साँचा" कह कर। अर्थ और अक्षर दोनों का ही बल होना पूर्ण कवित्व के लिए आवश्यक है। एक की ही सिद्धि होने पर उसका स्वरूप अधूरा लगता।

अर्थ और अक्षर दोनों की सिद्धि होने पर जो रचना प्राप्त होती है, वही काव्य है। तुलसी ने वैसी वाणी को चित्रकूट के प्रसंग में भरत के मुँह से कहला कर, स्वयं उसकी टीका करते हुए कहा है—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे।
अरथ अमित अति आखर थोरे॥
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी।
गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥

यह विशेषता भरत की वाणी के लिए सत्य है और तुलसी की वाणी के लिए भी सत्य है। थोड़े अक्षरों में अमित अर्थ। अक्षर सीधे-सादे; पर अर्थ कितना गहरा है यह सभी जानते हैं। काव्य का यह पूर्ण रूप है। थोड़े शब्दों में अर्थ एवं भाव की गहरी अभिव्यंजना करने वाली रचना ही काव्य है। काव्य के शब्द सामने होते हैं; पर उन शब्दों में परिव्याप्त अर्थ, प्रतिबिम्बित सौंदर्य और निगूढ़ भाव-संपत्ति को कोई ही पूर्णतया पकड़ सकता है; जितना ही गहरे उतरिए उतना ही और अद्भुत चमत्कार दिखलाई देता है। काव्य के समग्र वैभव का उद्घाटन सम्भव नहीं, उसमें नित्य नव्यता है, अगाध रमणीयता है, अथाह रस है। उसके लिए यह सत्य है कि "जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।"[१]

संक्षेप में यह तुलसी की काव्य सम्बन्धी धारणा है। उनके काव्य-दर्शन में प्रतिपादित काव्य का यही स्वरूप उनकी अपनी रचनाओं में सर्वत्र देखने को मिलता है। हम कह सकते हैं कि उनका काव्य-दर्शन सामाजिक एवं व्यावहारिक होते हुए भी अत्यन्त उदात्त एवं उत्कृष्ट है और सन्तोष की बात तो यह है कि अपनी रचनाओं में उन्होंने उसे उतारा है, उसका सिद्धान्त प्रतिपादन मात्र नहीं किया।

काव्य-कला

गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-कला, विश्लेषण के लिए बहुत बड़ा विषय है। यहाँ इस पर अधिक विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता। इस प्रसंग का प्रमुख उद्देश्य उनकी अपनी कला-सम्बन्धी विशेषताओं को स्पष्ट कर देने अथवा उनकी ओर संकेत कर देने का है जो उनकी कला-कृतियों को एक विशिष्ट आभा और आकर्षण प्रदान करती हैं। यह कथन निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसे कम लोग हैं, जिनका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व उनकी रचना में झाँकता हुआ दिखायी पड़ता है और उसमें उनकी ऐसी छाप छोड़ता चलता है कि अनेक कृतियों के बीच भी हम पहचान कर कह दें कि यह उनकी रचना है। तुलसी की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप विद्यमान है। यह छाप ऊपर से स्थूल रूप से हमें उतनी महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ती, परन्तु जब हम गहरे पैठ कर सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं तो पता चलता है कि उसके भीतर एक बड़ी व्यापक चेतना विद्यमान है। जिस स्थल को आप ध्यान से देखते हैं वही स्थल तुलसी के निजी सिद्धान्तों और धारणाओं से अंकित है। और इस अनुभूति तक पहुँच कर यह प्रकट होता है कि वे कितने सजग, दूरदर्शी, सविवेक तथा सप्रभाव लेखक हैं। उनकी चेतना की विद्युत् रेखा सर्वत्र हमें झकझोर कर बताती रहती है कि यहाँ भी कुछ है। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि एक ही व्यक्ति राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, साहित्यिक आदि सभी पक्षों में एक साथ इतना जागरूक कैसे रह सकता है?

तुलसी उस कोटि के लेखक हैं, जिनके सामने भाव-प्रकाशन की क्षमता का प्रश्न नहीं, वरन भाषा और शब्दों पर उनका पूरा अधिकार है। उनके माध्यम से वे अपने सूक्ष्म विचारों और व्यापक सिद्धांतों को व्यक्त करते हैं। वे अपनी रचना में शब्द-प्रयोग, भाषा-प्रयोग, अलंकार-भाव-वर्णन, चरित्र-चित्रण के साथ-साथ जीवन-यापन की विधि पर भी संकेत करते हैं। जीवन की शारीरिक,

मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उलझनों और समस्याओं को दूर करना उनकी रचनाओं का उद्देश्य है, किन्तु इन बातों पर विस्तृत विचार करना यहाँ इस प्रसंग का उद्देश्य नहीं है, परन्तु इतना कहना आवश्यक है कि इनमें से प्रत्येक पक्ष के विशेषज्ञ हैं, जो तुलसी की रचनाओं से दैनिक जीवन-चर्या के संकेत ग्रहण करते हैं और उन्हें आधुनिकतम खोज-द्वारा प्राप्त भोजन व्यवस्था से तुलना कर सत्य सिद्ध कर देते हैं। यहाँ इस प्रसंग को लाने का मेरा यही तात्पर्य है कलात्मक प्रदर्शन उनका उद्देश्य नहीं, वरन् कला उनके वास्तविक जीवनादर्श अथवा सामाजिक दर्शन के स्पष्टीकरण का माध्यम-मात्र है। जहाँ तक कलात्मक दक्षता का प्रश्न है, तुलसी उसके प्रदर्शन से बिलकुल अलग ही रहना चाहते हैं; वे स्पष्ट कहते हैं—

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

× × ×

कवित रीति नहिं जानौ कवि न कहावौं।
संकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावहुँ॥

इस कथन का कारण यह नहीं है कि उनको कला-सम्बन्धी या काव्य-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान नहीं है, परन्तु उसका प्रमुख कारण यह है कि काव्य का या कला का जो आदर्श उनका है, वह संभवतः उस युग को अथवा उनके पूर्ववर्ती विद्वानों को मान्य नहीं है। वे ऐसे उक्ति-वैचित्र्य को कभी महत्व नहीं दे सकते जिसके भीतर सत्य का समावेश न हो अथवा जिसके भीतर जीवन का मार्ग-प्रदर्शन करने वाले उदात्त चरित्र का चित्रण न हो। इसीलिए वे कोरे कागद में सत्य का लिखना ही अपना उद्देश्य मानते हैं। साथ ही साथ काव्य का व्यापक एवं उदात्त आदर्श स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

जो समाज के प्रत्येक वर्ग और व्यक्ति का कल्याण कर सके वही कला है। वहाँ पर स्पष्ट रीति से तुलसी की कला कला के लिए नहीं, वरन कला जीवन के लिए है, यह विश्वास भली भाँति प्रकट होता है।

तुलसी ने अपने जीवन-सम्बन्धी आदर्श में समन्वय के सिद्धांत को अपनाया हैं, जो बहुत कुछ गीता के मार्ग पर है। उन्होंने दार्शनिक मतवाद की दृष्टि से राम के व्यक्तित्व में सगुण और निर्गुण के समन्वय का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार अपनी दृष्टि की व्यापकता और उदारता के द्वारा अपने रामचरित मानस में शैव और वैष्णव आस्थाओं के समन्वय का उद्देश्य रखकर शंकर का चरित्र-चित्रण करते हुए उन्हें एक साथ—'सेवक स्वामि सखा सिय पी के' रूप में अंकित किया है। इसी प्रकार लोक-जीवन के व्यावहारिक पक्ष के चित्रण में उन्होंने लोक और वेद का समन्वय किया है। शास्त्र और परम्परा दोनों ही विधियों का सम्मान तुलसी की लोक-प्रियता का कारण और उनके मर्यादावाद का आधार है। यही समन्वय हमें उनके कलापक्ष में भी देखने को मिलता है। चाहे शब्दावली हो, चाहे अलंकार हो, चाहे वर्णन हो और चाहे समस्त रचनाओं की शैलियाँ हों, हम यही देखते हैं कि तुलसी ने परम्परागत शास्त्रीय और लौकिक दोनों ही प्रणालियों को समन्वित कर अपनी शैली का निर्माण किया है।

जहाँ तक शब्दावली का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में अधिक खोज करने की आवश्यकता नहीं। तुलसी की रचनाओं में संस्कृत-बहुल शब्दावली भी है और ठेठ ग्राम शब्दावली या लोकप्रचलित शब्दावली भी। यही नहीं, रामचरित मानस के प्रारंभिक मंगलाचरण, स्तोत्र तथा विनय-पत्रिका के प्रारंभिक पद शुद्ध संस्कृत की रचनाएँ हैं; यथा—

यस्यगुण गण गणति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।
शेष सर्वेश आसीन आनन्दघन प्रणत तुलसीदासत्रासहारी॥

वहीं शुद्ध ठेठ भाषा की रचना भी है—

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं त भव बेगारि माँ परिहै छूटत अति कठिनाई रे।
ठाठ पुरान साज सब अठकठ सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचन्द मंद माल बिनु डोला रे।

मारग अगम संग नहिं संबल नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसीदास भव त्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे।।

अलंकारों में भी उन्होंने परम्परागत उपमानों का भी प्रयोग किया है और जीवन के निरीक्षण से प्राप्त नवीन अथवा लोक-मेधा-सुलभ उपमानों को भी ग्रहण किया है। साथ ही साथ वर्णन में भी शास्त्रीय विधि और वास्तविक जीवन दोनों का ही समन्वय किया है। शैली में भी उन्होंने संस्कृत के छन्दों तथा कवि-शिक्षा एवं शास्त्र की बातों और मर्यादा का पालन किया है। साथ ही साथ लोककाव्य-शैली में व्यवहृत झूलना, बरवै, सोहर, मङ्गल आदि गीतों में भी अपनी रचनाओं को ढाला है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलसी की काव्यकला भी शास्त्रीय और लोक कलाओं के समुचित समन्वय का परिणाम है।

उनकी कला का विश्लेषण शुद्ध शास्त्रीय पद्धति पर किया जा सकता है और इस रीति से हम उनके काव्य के कलापक्ष का अध्ययन शब्द-शक्तियों, अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, दोष आदि विवेचन के प्रसंगों में कर सकते हैं और इन आधारों पर बहुत कुछ अंशों में उनकी रचनाओं के कलापक्ष का अध्ययन किया भी गया है, परन्तु यहाँ पर हम उस प्रणाली को न अपना कर उनकी रचनाओं में व्याप्त कला की कतिपय प्रमुख विशेषताओं के विश्लेषण का ही प्रयत्न करेंगे।

तुलसी के काव्य-कला की सबसे प्रमुख विशेषता स्वाभाविकता और सरलता है। कला-सम्बन्धी कृत्रिमता से दूर रहने के लिए वे सरलता को प्रमुख स्थान देते हैं। उनका आदर्श है—

सरल कबित कीरति विमल जेहि आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु जो सुनि करहिं बखान।।

यहाँ पर उन्होंने वर्ण्यविषय और वर्णन-पद्धति दोनों ही ओर संकेत कर दिया है। वर्ण्य विषय यदि लोक के हृदय को आकर्षित करने वाला न होगा, तो उसका कोई प्रभाव लोक-भावना के संस्कार करने में नहीं पड़ सकता। हाँ, क्षणिक मनोरंजन चाहे भले हो, परन्तु तुलसी तो काव्य को सर्वजनमंगलकारी

बनाना चाहते हैं अतः उसमें विमल कीर्तिवाले व्यक्ति के चरित का वर्णन हो। साथ ही वह सरल हो, जिसे सभी लोग समझ सकें और इस प्रकार उसका उपयोग कर सकें। प्रायः होता यह है कि जब देने के लिए कोई महत्वपूर्ण विचार या भाव नहीं होता तब हम बड़ी ही क्लिष्ट शैली में लिखकर अपने साधारण भाव या विचार को महत्वपूर्ण बनाना चाहते हैं किन्तु जिनके पास अपने जीवन के प्रयोगों-द्वारा प्राप्त महत्वपूर्ण अनुभवों और विचारों का भंडार है उनकी भाषा सरल होगी। यह बात हम महात्मा गान्धी के जीवन में देख सकते हैं और यही बात कबीर और तुलसी के लिए भी सत्य है।

तुलसी की काव्य-कला की स्वाभाविक सरलता का तथ्य यही है कि उनके पास इतने गहरे भाव, विचार और अनुभूतियाँ हैं कि वे उन्हें सभी के लिए पूर्ण सुस्पष्ट रूप में रखना चाहते हैं। अतः इनकी कला में दुरूहता या क्लिष्ट कल्पना नहीं। इनकी कला बुद्धि-प्रधान नहीं। इसके लिए तुलसी ने दो साधनों को अपनाया है। एक तो उन्होंने अवधी और ब्रज के प्रचलित और लोकव्यापी रूप को लिया है और हम कह सकते हैं इनकी भाषा टकसाली है, किन्तु जिस टकसाल में उनकी शब्दावली गढ़ी गयी है वह शास्त्र-पारंगत पंडितों का टकसाल नहीं, वरन् वह लोकवाणी का टकसाल है, जो सदा ही नवीन शब्द सिक्कों को ढालता रहा है। तुलसी के अनेक शब्द हैं जिनका अर्थ आज भी ग्राम-समाज, केवल किताबी ज्ञान रखने वाले नागरिक समाज की अपेक्षा अधिक समझ सकता है। किन्तु केवल सरल शब्दों को ही ले लेने से किसी की भाषा सरल नहीं हो जाती, जब तक कि उसे स्वाभाविक एवं लोकप्रसिद्ध प्रयोगों में ढालने की क्षमता न हो। तुलसी की इस दिशा में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने पद्य को भी—कविता को भी—इस सरल वाक्य-रचना में ढाला है कि वह हमारे बोलचाल के गद्य से भी अधिक सुलझी हुई जान पड़ती है। बड़े-बड़े क्लिष्ट भावों को जिस सरलता से तुलसी ने पद्य में प्रकट किया है उतनी सरलता से हम उन्हें यदि गद्य में भी प्रकट करना चाहें तो नहीं कर सकते हैं। यह बात रामचरित मानस के संवादों और वर्णनों द्वारा तो स्पष्ट है ही उनके अन्य ग्रन्थों में भी पूर्ण प्रकट है। कृष्ण गीतावली का

एक उदाहरण देखिए—

अबहिं उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई।
सुन मैया तेरी सौं करौं याकी टेक लरन की सकुच बेचिसी खाई।
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्यायी।
मुँह लाये मूड़हिं चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई।।

ऐसे ही उनके अनेक उदाहरण हैं। कवितावली में राम के बालसौंदर्य का चित्रण करने वाला एक छन्द है, जिसमें वर्णमैत्री, शब्दमैत्री संगीतात्मकता, कोमल कल्पना आदि का जो चमत्कार है; वह तो है ही; किन्तु उसकी बड़ी विशेषता यह है कि उनके द्वारा प्रकट किये गये भाव को हम अपने गद्य में प्रकट करना चाहें तो बड़ी उलझन में फँस जाते हैं। देखिये एक छन्द यह है—

वरदन्त की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगे छबि मौतिन माल अमोलन की।
घुँघुराली लटैं लटकैं मुख ऊपर कुन्डल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की।

इसके और अधिक विश्लेषण करने की कदाचित् आवश्यकता नहीं है। कलात्मक विशेषता, शब्द की झंकृति, प्रवाह और कल्पना प्रकट हो रही है।

दूसरा साधन जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी कला को इतनी सरल और स्वाभाविक बनाने के लिए किया है, वह है हमारे लोक-जीवन के देखे सुने पदार्थों और व्यापारों से अपने उपमानों, रूपकों और प्रतीकों के चुनने का प्रयत्न। तुलसी ने प्रायः अपने अप्रस्तुत व्यापार को जिसके द्वारा वे प्रस्तुत को स्पष्ट करना चाहते हैं, ठेठ लोकजीवन से चुना है, जिसका सभी को अनुभव है और जिसके द्वारा भाव की तीव्रता का अनुभव सहज ही किया जा सकता है। कुछ उदाहरण ही इस बात को सिद्ध कर देंगे—

नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी।
पीपर पात सरिस मन डोला।

× × ×

सो मौपे कहि जाति न कैसे। साक बनिक मनिगन गुन जैसे।

इसी प्रकार—

राम नाम अवलम्ब बिनु परमारथ की आस।
बरसत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास।
पात पात को सींचिबो बरी बरी को लोन।
तुलसी खोंटे चतुरपन कलि डहके कहि को न ।।

ऐसे ही अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इतिहासकार स्मिथ ने तुलसी और कालिदास की उपमाओं की तुलनात्मक महत्ता पर लिखा है कि अपनी सर्वोत्तम उपमाओं में तुलसी कालिदास से बढ़ कर हैं।[1]

तुलसी की काव्य-कला की दूसरी विशेषता प्रभावोत्पादकता है। तुलसी ने जिस दृश्य का, जिस चरित्र का, जिस भाव का या जिस तथ्य का वर्णन किया है, वह हमारी कल्पना के सामने सजीव रूप से आ जाता है, मन को तन्मय कर लेता है और हृदय पर प्रभाव डालता है। यह तुलसी के काव्य की लोकप्रियता का रहस्य है। इस प्रभावोत्पादकता का विश्लेषण करें तो हम कई बातें पाते हैं, जो इसकी आधार हैं। पहली बात तो यह है कि तुलसी का शब्द-संगठन इतना मार्मिक है कि वर्णन को तुरन्त सजीव और गति-सम्पन्न कर देता है। शब्दसंहिति, पदसंगठन, वर्णमैत्री तीनों ही बातें मिलकर छन्द को एक विशेष गति प्रदान करते हैं और दृश्य सजीव रूप में अपनी नाटकीय विशेषता अथवा अपने व्यापारों की गतिशीलता के साथ हमारे सामने खड़ा हो जाता है। जिसके दो-एक उदाहरण देखिए—

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियन अँखियन बीच।

---

1. 'Tulsidas, although not averse to using the conventional language of Indian poets in many passages, is rightly praised because his narrative teems with similes drawn not from the traditions of the schools, but from nature herself, and better than Kalidas at his best.'

—V. A. Smith; Akbar the Great Moghul. P. 420

तुलसी मन रंजन रंजित अञ्जन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।
कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
आनंद उमंग मन यौवन उमंग रूप की उमंग उमगति अङ्ग-अङ्ग है।

गति और क्रिया का सूचक एक उदाहरण देखिए। हनुमान-रावण-युद्ध का प्रसंग है—

दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक
चीरि फारि डारे एक मीजि मारे लात हैं।

ऐसे ही—बीथिका बजार प्रति अटनि अगार प्रति
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिये।
अध ऊर्द्ध बानर बिदिस दिसि बानर है।
मानहुँ रहो है भरि बानर तिलोकिये।
एक करैं धौज एक कहैं काढ़ौं सौज
एक औंजि पानी पी के कहैं बनत न आवनो।
एक परे गाढ़े एक डाढ़त ही काढ़े
एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।

तो इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी की शब्द-संहिति ऐसी है कि समस्त दृश्य, शब्दों के दो-एक आघात पर ही हमारे सामने नाचने लगता है और हम उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

इसी को और अधिक प्रबलता प्रदान करता हुआ उनका उक्ति-वैचित्र्य है, जो उस दृश्य को स्मरणीय बना देता है। यहाँ शब्द और अर्थ दोनों के प्रयोग की विलक्षणता काम करती है। कथन के न जाने कितने उलटे-सीधे ढङ्ग तुलसी के काव्य में हमें मिलते हैं, जो कि हमारे अन्तःकरण पर स्थायी प्रभाव डालते हैं। इस कथन की पुष्टि के कुछ उदाहरण ये हैं—

दशरथ राम के वनवास पर सुमन्त से कह रहे हैं। गीतावली का उदाहरण है—

सुनि सुमन्त ! कि आनि सुन्दर सुवन सहित जिआउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन अमिय पिआउ ॥

(गीतावली)

यहाँ पर 'मरन-अमिय' के विचित्र प्रयोग के साथ-साथ भाव की तीव्रता भी दर्शनीय है। ऐसे ही
कौशल्या का कथन है—

हाथ मीजिबौ हाथ रह्यो।
पति सुरपुर सिय राम लखन वन मुनि व्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यौं मरिबोई मृतक दह्यो।

(गीतावली)

मृत्यु को ही मृतक बनाकर श्मशान की अग्नि के समान मैंने जला दिया है, अतः अब मेरा मरण संभव नहीं। इस उक्ति में कितना गहरा भाव व्यंग्य रूप में निकलता है।
ऐसे ही—

तनु विचित्र कायर वचन अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भये पच्छधर ताते कह सब मोर ॥

(दोहावली)

तथा—

है निर्गुन सारी बारिक बलि घरी करौ हम जोही।
तुलसी ये नागरिन जोग पट जिन्हहिं आजु सब सोही ॥

(कृष्णगीतावली)

प्रभावोत्पादकता के आधार रूप में आयी तीसरी बात इनका सजीव मनोवैज्ञानिक चित्रण है। अपने वर्णनों में पाठक के मन पर पूर्ण अधिकार रखने वाले तुलसी के समान कवि कठिनाई से ही मिलते हैं। इनकी विलक्षण मनोवैज्ञानिक सूझ का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि एक भाव के बाद ठीक

दूसरा विपरीत भाव तुलसी के वर्णनों में आता है और पाठक इतना अधिक तुलसी के हाथ में होता है कि वह तुरन्त दूसरे भाव में भी उसी मग्नता के साथ बहने लगता है, जैसा पहले भाव में बहता था। बालकांड में पुष्पवाटिका के श्रृङ्गार के बाद ही वीर, रौद्र, हास्य आदि रसों का क्रमशः निर्वाह इस बात का प्रमाण हैं। तुलसी हमें जब चाहें, तब हँसा सकते हैं और जब चाहें तब रुला सकते हैं। वे क्षण भर में हमें आवेशपूर्ण कर सकते हैं और ठीक दूसरे ही क्षण शांत और विवेकपूर्ण स्थिति में ला सकते हैं। इतना तुलसी का हमारे मनोवेगों पर अधिकार है।

तुलसी ने विभिन्न स्थिति और अवस्थाओं में पड़े हुए मानवों का मनोविश्लेषण तो बड़ी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया ही है, परन्तु इस दिशा में उनका बहुत सफल चित्रण बाल-मनोविज्ञान का है। राम का, चारों भाइयों का तथा कृष्ण का बाल-स्वभाव जितना यथार्थ, सजीव एवं मनोग्राही रूप में एकाध पंक्तियों द्वारा उन्होंने कर दिया है, वह देखते ही बनता है। दो-एक उदाहरण ये हैं :—राम का चारों भाइयों के साथ चित्रण है—

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाई कै नाचत मातु सबै मनमोद भरैं।
कबहूँ रिसियाइ कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं।

इसी प्रकार बच्चों के सुकुमार स्वभाव की ओर कितना सुन्दर संकेत है—तुलसी राम के बाल-सुलभ-सुकुमार स्वभाव के लिए कहते हैं—

हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिम्बन ज्यों झाईं।

यदि कोई उनके सामने हँस दे, तो वे हँस पड़ते हैं और रो दे तो रो पड़ते हैं जैसे वे स्वयं उसी का प्रतिबिम्ब हों।

ऐसे ही कृष्ण के बाल-स्वभाव का एक दृश्य है। गोपिकाएँ कृष्ण पर नटखटी का दोष लगाती हैं तो अपनी सफाई देते हुए कृष्ण निखर उठते हैं, वे कहते हैं—

मेरी टेव बूझि हलधर सों संतत संग खेलावहिं ।
जे अन्याउ करैं काहू को ते सिसु मोहि न भावहिं ।।

हलधर सदा साथ खिलाते हैं, यही प्रमाण है कि वे सीधे लड़के हैं, नहीं तो वे साथ ही न खिलाते और वे सदा साथ रहते हैं अतः वे अधिक जानते हैं, यह ग्वालिनें क्या जानें ? इन शब्दों के साथ अंतिम पंक्ति की सफाई कृष्ण के वास्तविक रूप को कितना स्पष्ट कर देती है । यह हैं तुलसी का मनोवैज्ञानिक चित्रण, जो उनकी कला में प्राण फूंकता है । ऐसे चित्रणों से उनकी कृतियाँ भरी हुई हैं ।

तुलसी की कला की तीसरी विशेषता यह है कि वह मर्यादापूर्ण तथा औचित्य और सुरुचि-संपन्न है । तुलसी के वर्णनों और चरित्र-चित्रणों में मर्यादा का जितना ध्यान रखा गया है वह इतना सर्वविदित है कि उस विषय पर और अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं; परन्तु उनकी कला के भीतर जो शब्द-प्रयोग, वाक्य या पद-रचना और भाव-वर्णन है उसमें औचित्य का जितना ध्यान तुलसी को है उतना ध्यान शायद ही किसी अन्य कवि को रहता हो। यही तुलसी के समस्त काव्य में व्याप्त उनके सचेतन व्यक्तित्व का प्राण है । इसे हम कुछ उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करेंगे ।

तुलसी ने अपने लिए कहा है कि 'कवि न होउँ नहि चतुर प्रवीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ।।' फिर रामचरित-मानस में ही आगे चलकर दो एक प्रसंगों में वे अपने को कवि-रूप में व्यक्त करते हैं, जैसे—

सीय बरनि केहि उपमा देई । कुकवि कहाइ अजस को लेई ।
तथा--बरनत रघुबर भरत बियोगू । सुनि कठोर कबि कहिहहिं लोगू ।

यहाँ पर तुलसी अपने को कवि कहते हैं, इसका क्या कारण है ? तुलसी अपने को कवि नहीं मानते हैं और उनका यह भी विश्वास है कि निर्मलमति के बिना कवित्व नहीं प्राप्त होता । रामचरित का वर्णन करने के लिए वे शंकर से इसी प्रकार की मति की याचना करते हैं—

सपनेहुँ साँचेहूँ मोहिं पर जौं हर गौरि पसाउ ।
तौ फुर होई जो कहहुँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ।।

और इस याचना के फलस्वरूप शंकर कृपा करते हैं और उन्हें कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है :

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरित-मानस कबि तुलसी ॥

इस प्रकार शंकर से शक्ति प्राप्त करके कवि बन जाने पर ही ये अपने को कवि लिखते हैं, इसके पूर्व नहीं। इसी प्रकार अनेक शब्दों के प्रयोग हैं, जो औचित्य-चेतना के प्रमाण हैं।

इसी प्रकार तुलसी ने राम के सम्पर्क या प्रभाव से प्रभावित होने वाले व्यक्ति के लिए तीन पदों का प्रयोग किया—'मन मुदित, तन पुलकित, नयन स्रवित'। कहने की आवश्यकता नहीं कि भरत के प्रसंग में इनका खूब प्रयोग हुआ है। किन्तु इसके साथ ही साथ तुलसी विनय-पत्रिका तथा दोहावली में इसका नियम-सा स्पष्ट करते हैं—

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ ॥

तथा— × × ×

रहै न जल भरपूरि राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि मूठी मेलिये ॥

तो जहाँ पर ऐसे प्रसंग हैं कि राम के प्रेम या प्रभाव का चित्रण हुआ, तुलसी इस पदावली का प्रयोग करना नहीं भूले है, यथा—

पुलकैं नृप गोद लिये।

× × ×

जानकी नाह की नेह लखो पुलको तनु बारि विलोचन बाढ़े।

× × ×

तुलसी अति प्रेम लगी पलकैं पुलकीं लखि राम हिये महँ हैं।

× × ×

प्रेम पुलकि उरलाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया।

इसी प्रकार भाव-वर्णन में सर्वत्र औचित्य का ध्यान तुलसी को है, परन्तु

इस औचित्य का नाम सुनकर यदि कोई यह धारणा बना ले कि तुलसी एक नैतिकता का उपदेश करने वाले नीरस से कवि होंगे, यह उसका भ्रम है। तुलसी ने प्रेम और हास्य का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। इतना उत्कृष्ट और गहरा प्रेम-वर्णन है कि जितना कृष्णप्रेम कवियों का है, उससे कम नहीं। कृष्ण प्रेम के अन्तर्गत परकीय-प्रेम में मर्यादा छोड़ कर कृष्ण के अनुराग को ग्रहण करने का वर्णन है और यही प्रेम का चरम उत्कर्ष है कि उसके सामने कोई बाधा और बन्धन नहीं। इस प्रेम का संकेत करने वाली एक प्रसिद्ध उक्ति है—'बाबरी जो पै कलंक लगौ, तो निसंक ह्वै काहे न अंक लगावति' यह पराकाष्ठा है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि तुलसी भी प्रेम-वर्णन में इसी सीमा तक चले जाते हैं। बन जाते हुए राम के सौन्दर्य और शील पर मुग्ध होकर मार्गवासी स्त्रियों की प्रेम दशा कृष्ण की उपर्युक्त प्रेमिका से कम नहीं। देखिये—

(१) जिन देखे सखी सति भायहु ते तुलसी तिन तौ मन फरि न पाये।
(२) सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यौं हमरो मन मौहैं।

इनमें प्रथम में सौन्दर्य और दूसरे में शील पर मुग्धता है; वन-ग्राम की स्त्री कहती है :

धरि धीर कहैं चलि देखिय-जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहि है जग पोच नै सोच कछू फल लोचन आपनै तो लहिहैं।
सुख पाइ है काने सुनै बतियाँ कल आपुस मैं कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगी पलकैं पुलकी लखि राम हिये महिहैं।

प्रथम तीन पंक्तियों में प्रेम को पराकाष्ठा तक पहुँचाकर अन्तिक पंक्ति में उन्होंने उसे मर्यादित बना दिया है। अति प्रेम में वह स्त्री विभोर हो जाती है और उसी आस्था में वह राम का दर्शन अपने हृदय में कर लेती है और इस प्रकार उनके पीछे लगकर लोक-मर्यादा को भंग करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसी प्रकार का औचित्यपूर्ण प्रेम और हास्य अपने उत्कृष्ट रूप में पुष्पवाटिका प्रसंग में भी विद्यमान है। यह औचित्य उनकी काव्य-कला की

प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलसी ने अपने काव्य में औचित्य सिद्धान्त का पालन किया है।

चौथी विशेषता यह है कि तुलसी की कला बड़ी उदात्त है। वह हमारी भावनाओं का संस्कार करने वाली और सत्प्रेरणा प्रदान करने वाली है। तुलसी ने अनेक स्थानों पर विभिन्न भावों तथा दृश्यों के ऐसे वर्णन किये हैं जो अपने चरम उत्कर्ष में हैं। अपनी उदात्त प्रतिभा के बल पर ही तुलसी ने राम और सीता के व्यक्तित्व में जो चरम सौंदर्य, चरमशील और चरमशक्ति का समावेश किया है वह हमारे लिए एक इतने वृहद् व्यापक और उच्च मान-दण्ड का काम करता है कि उससे जब हम विश्वकाव्य के नायक और नायिकाओं को नापते हैं तो वे हमें जँचते नहीं। यही नहीं, राम और सीता के चरित्र-चित्रण के अनेक अन्य प्रयास भी किये गये हैं, परन्तु हमारे सामने जो तुलसी का दिया मानदण्ड है, कसौटी है, उसमें वे खरे नहीं उतरते; इतना ही नहीं रावण, भरत, हनुमान आदि के चरित्र में भी उत्कर्ष हमें देखने को मिलता है। वह तुलसी की वृहत् कल्पना, व्यापक अनुभूति तक यथार्थ ज्ञान का द्योतक हैं। रावण के परम धीर चरित्र का जिस उदात्तता से तुलसी ने चित्रण किया है, वह तो सराहनीय है ही, उसमें भी सराहनीय तो यह तथ्य है कि व्यंग्य से वे राम की उच्चता का चित्रण कर रहे हैं।

एक अन्य प्रमुख विशेषता जो तुलसी की कला की है और जो हमारे लिए आज सबसे महत्वपूर्ण है, उसकी प्रेरणात्मकता है। अपने उदात्त चित्रणों द्वारा उन्होंने हमें जीवन-सम्बन्धी प्रेरणा प्रदान की है। उनके चित्रणों से कौन प्रभावित नहीं होता। जब तुलसी कहते हैं—

> तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि।
> देत जो भू भाजन-भरत लेत जो घूँटक पानि॥

तब हमें दानी बनने की तथा उदारता की, याचना के संयम की एक साथ प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही अपने आश्रित को आश्रय देने की प्रेरणा तुलसी किन शब्दों से देते हैं—

तुलसी तृन जल कूल को निरबल निपट निकाज।
कै राखे कै सँग चलै बाँह गहे की लाज॥

जब तुच्छ तिनका आश्रित का इतना साथ देता है; तब समर्थ मानव क्यों न देगा ?

आज युग बदल गया और जीवन-सम्बन्धी बहुत-सी मान्यताएँ भी बदल गई हैं, फिर भी तुलसी के युग की अनेक मान्यताओं को न मानते हुए भी उनके उदात्त दृष्टिकोण से प्रभावित हुए बिना हम नहीं रह सकते।

इस प्रकार वे अपनी रचनाओं में व्याप्त तथ्यों के द्वारा हमें स्वस्थ जीवन व्यतीत करने तथा सामाजिक उन्नति में साथ देने की प्रेरणा देते हैं। साथ ही वे अपनी सरल, स्वाभाविक, लोक-सुलभ कला से प्रेरित करते हैं कि कला किसी विशिष्ट वर्ग की नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानव-समाज की है, जन-जन कलाकार एवं कलाप्रेमी हो सकता है और वास्तविक कलाकृति वह है, जिससे सभी लाभ उठा सकें। तुलसी ही के शब्दों में—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

तुलसी का राज्यादर्श

आज के युग में जीवन की सभी बातें राजनीतिक पृष्ठभूमि पर देखी जाती हैं। शताब्दियों की दासता के कारण, राजनीतिक बन्धनों से मुक्ति हमें राजनीतिक चेतना की महत्ता बता रही है। और सभी वस्तुओं को राजनीति के रंग से रँगा हुआ दिखाती है, पर, यह दृष्टिकोण और यह भावना भारतीय जनसमूह की सार्वकालिक नहीं हो सकती, न रही थी और न रहेगी ही। राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति और रक्षा हमारा उद्देश्य अवश्य है और उसके बिना काम भी नहीं चल सकता, पर देश की स्वतन्त्रता की रक्षा जनसाधारण का दैनिक कार्य नहीं हो सकता। इस रक्षा का उत्तरदायित्व कुछ के सिर रहेगा—हाँ, समय पर सभी साथ दे सकते हैं। जो विशाल भारत देश के जनसाधारण के जीवन की गतिविधि इस रूप में नहीं समझते, वे कभी-कभी इस परिस्थिति की उल्टी व्याख्या कर बैठते हैं। और कहते है कि भारत में राजनीतिक चेतना का अभाव रहा है। यथार्थ में भारतीय राजनीति सदा ही धर्म की अनुगामिनी रही है। 'धर्म का अर्थ समझने में यदि हम भ्रम न करें, तो हम, **समाज तथा व्यक्ति को धारण करने वाले, विकासात्मक कर्त्तव्यों को धर्म कहते हैं** और इस दृष्टि से धर्म बड़ी व्यापक वस्तु है, जिसका हम साम्प्रदायिक अर्थ लगा कर उसका अपमान करते हैं। मानव धर्म शास्त्रों तथा स्मृतियों ने मनुष्य का तथा जाति, समाज और व्यक्ति का धर्म बताकर उसके दैनिक जीवन की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है। उस धर्म का हम तिरस्कार नहीं कर सकते। राजनीति भी इसी प्रकार एक धर्म है। जिसमें राजा और राज्याधिकारी अथवा सचिव, मन्त्री, अमात्य आदि एक विशेष प्रकार के नियमों और सिद्धान्तों का पालन करते हैं। अत: यह राजधर्म या राजनीति हमारे देश में व्यापक धर्म का एक अंग मात्र रहा है। सम्पूर्ण धर्म को इसने ग्रस्त नहीं किया। विशेष अवसरों पर अवश्य

इसे प्रधानता मिलती रही है; जैसे महाभारत में अथवा गुप्तकाल में।

ऊपर कहे कारण से राजनीति से साथ-साथ भी धर्म का तिरोभाव नहीं हो सकता और जनसाधारण अपने व्यापक मानव धर्म और समाज धर्म का पालन सदा ही करते रहें, यही सबसे अच्छा है। क्योंकि साधारण व्यक्ति के व्यापक-धर्म का पालन करना, आपद्धर्म का पालन करने से सरल है। जब जन-साधारण-आपद्धर्म या युद्धधर्म का पालन करने के लिए वाध्य होते हैं तब समझना चाहिए कि शासन-व्यवस्था क्षीण और निर्बल है। अन्यथा ऐसा अवसर व्यापक युद्धकाल में ही आता है, जब शासक और जनता दोनों उसमें ही व्यवस्थित ढंग से तत्पर होते हैं।

धर्म और समाज, जन और धन की रक्षा के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। तेजस्वी नेताओं को अपनी भी शक्ति होती है और उनके तेज, प्रताप और शौर्य के साथ जहाँ जनता की शक्ति मिल जाती है, वहाँ विजय निश्चित है। विवेकपूर्ण, दूरदर्शी नेतृत्व के साथ जहाँ भी विश्वासपूर्वक बल का प्रयोग होता है वहाँ हार नहीं हो सकती। इसी की ओर संकेत करते हुए गीता में कहा गया है :—

> यत्र योगेश्वरो कृष्णोत्रय पार्थो धनुर्धरः।
> तत्र श्रीर्वजियो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

समस्त राष्ट्र की सेना का प्रतीक अर्जुन हैं और विवेक संचालक के प्रतीक कृष्ण हैं। राजनीति और राष्ट्र धर्म का यह महत्वपूर्ण तथ्य है।

परन्तु यह राजधर्म का युद्ध-सम्बन्धी एक पक्ष है, सम्पूर्ण राज्य धर्म केवल विजयों-द्वारा ही पालित नहीं होता, वरन् शान्ति, सुव्यवस्था और समृद्धि के द्वारा प्रकट होता है। अतः पूरे राज्य धर्म को समझने के लिये हमें दोनों पक्ष देखने आवश्यक हैं।

ये दोनों पक्ष हमें बड़ी सुन्दरता से महात्मा तुलसीदास द्वारा चित्रित राम के चरित्र में देखने को मिल सकते हैं। तुलसी ने जहाँ पर धर्म और समाज की सुन्दर और आदर्श व्याख्या की है, वहीं पर 'राज-धर्म' की ओर भी सुन्दर संकेत

किये हैं और इन संकेतों के द्वारा, एक विशिष्ट परवशता के युग में भी उनकी विलक्षण प्रतिभा पर आश्चर्य होता है।

तुलसी का राज्य 'राम-राज्य' के रूप में अभिव्यक्त हुआ है परन्तु उस रामराज्य की महत्ता और आवश्यकता के लिए उन्होंने कलियुग का भी चतुराई से चित्रण किया है। 'रामचरित मानस' का कलियुग चित्रण जैसा पहले कहा जा चुका है तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण था। यदि उस युग के सम्बन्ध में सीधे ढंग से कोई इतनी आलोचना कर देता, तो राजनीतिक दंड मिलना निश्चित था। परन्तु गोस्वामीजी की चतुराई और प्रबन्ध कौशल, इस बात में है कि स्पष्ट बात कहने पर भी किसी की भी इस प्रकार सोचने की बुद्धि न हुई। अशिक्षित और अयोग्य राजाओं तथा एकांगी राजनीति की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है :—

गोंड़ गँवार नृपालकलि यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद, कलि, केवल दंड कराल ॥

स्पष्ट है कि उनका संकेत किस कलियुग से था। यथार्थ में उनकी व्याख्या आलोचना सच्ची थी यदि कोई भी तुलसी के विचार का राजा हो तो राम-राज्य का बरता जाना निश्चय था, पर धार्मिक और राजनीतिक कारणों से ऐसा न हो सका।

राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में विवशता होते हुए भी गोस्वामीजी ने समाज को रामराज्य का आदर्श अवश्य प्रदान किया। इसी कारण से उनका 'राम-चरित मानस' जिस आदर्श की स्थापना करने में प्रयत्नशील है वह शील पर प्रमुखतया आधारित है। राजनीतिक दृष्टि से तुलसी के समय में 'कलियुग' की ही व्यवस्था थी, पर समाज में उन्होंने 'रामराज्य' की पूरी व्याख्या की। जिसका प्रभाव आज भी, हमारी ग्राम समाज की अपढ़ तथा अर्द्ध शिक्षित जनता के आदर्श एवं त्यागमय व्यवहारों में देखा जाता है। स्त्री-समाज में आज भी कितनी ही अशिक्षित किन्तु आदर्श माताएँ हैं, जो राम के द्वारा स्थापित आदर्श और मर्यादा की पग-पग पर रक्षा करती हैं। महात्मा तुलसीदास स्वयं 'रामराज्य' में रहे और सभी को खरे कलियुग के बीच 'रामराज्य' की

व्यवस्था करने की विधि भी बता गये। उनकी इस प्रकार की सूझ, पिछले दिनों की राज्यों में बनती हुई अस्थायी जन-सरकारों की कल्पना से कम महत्व नहीं रखती।

तुलसी का कलियुग 'वर्णन' भुशुंडि-कथा के अन्तर्गत अपना अलग महत्व रखता है। उसका वर्णन हमारे सामने न केवल रामराज्य से विषमता ही स्पष्ट करता है, वरन् वह तत्कालीन जन-परिस्थिति का द्योतक है। आज भी हमारी परिस्थिति बहुत कुछ वैसी है, उसका एक दृश्य देखिए :—

मारग सोइ जकहँ जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ सन्त कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना॥

इस प्रकार अन्य विषम परिस्थितियों का वर्णन है। जनता मूढ़, दुःखी और अधर्मरत है। जनता की यह दुःखमयी दशा, तुलसी का यह विचार है कि राजा या शासक की कुनीति और दुराचार के कारण होती है। जब शासक अपना धर्म पालन करता है तभी प्रजा भी सुखी, सदाचारी और समृद्ध रहती है। आजकल संसार में राजतंत्र समाप्त हो रहे हैं और लोकतंत्रों की स्थापना हो रही है। इसका मुख्य कारण यही है कि राजा की सद्वृत्ति पर प्रजा का विश्वास नहीं है। राजा स्वेच्छाचारी और अत्याचारी होकर बराबर यह प्रमाण देते हैं कि उनके हाथों जनहित सुरक्षित नहीं। तुलसी का राज्यादर्श ऐसे राजा या शासक की कल्पना करता है जिसका व्यक्तिगत स्वार्थ कुछ है ही नहीं। त्याग ही जिसका व्यवहार है, तथा लोकादर्श और लोकहित जिसका नियम है। राम के विवाह के पश्चात् राजा ने अपनी इच्छा होते हुए भी राम के राजतिलक की स्वयं घोषणा नहीं की, वरन् मंत्रियों और पंचों से पूछ कर उनकी इच्छा जाननी चाही :—

जो पांचै मत लागैं नीका। करहु हरिष हिय रामहिं टीका॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत-बिरव परेउ जन पानी॥

परन्तु त्यागमय आदर्श राम में देखने को मिलता है। यह निश्चय जानकर

कि राम का अभिषेक होने जा रहा है, राम प्रसन्नता से नाच नहीं उठे और लोगों को भोज और दावतें नहीं देने लगें, वरन् उन्हें राज्य का भार अकेले अपने हाथों लेना अनुचित जँचा, वे 'सम्मिलित उत्तरदायित्व' के पक्षपाती थे क्योंकि वे अच्छी प्रकार जानते थे कि शासक होने का अर्थ चैन और मौज नहीं, त्याग और कार्य है। अत: उन्होंने सोचा :—

जग में एक सङ्ग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
विमल वंश यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाय बड़ेहिं अभिषेकू ॥

यदि सभी के हाथ, राज्य का कार्य रहता और सभी पर राज्य संचालन का सम्मिलित भार रहता, तो न राम का बनवास ही होता और न इस प्रथा के कारण जो इतिहास में अनेक भाइयों के रक्तपात हुए हैं, वही होते। अत: तुलसी के आदर्श का, राम के तर्क में सुन्दर संकेत उपस्थित है।

राम को सभी चाहते थे, उसका कारण उनका सौन्दर्य और शील था। और राम विजयी होकर एक आदर्श राज्य की स्थापना कर सके, इसका कारण उनकी शक्ति और नीति थी। राम के व्यक्तित्व का पूर्ण प्रकाशन तुलसी-द्वारा रामचरित मानस में ही हो पाया है, इसके पूर्व नहीं। अत: राम के आचरण, व्यवहार और नीति में तुलसी की कल्पना और धारणा का प्रमुख हाथ है। राम धर्मशील, नीतिकुशल और वीर हैं। धर्मशीलता राजा का प्रमुख गुण है। इसके विपरीत होने पर वह स्वेच्छाचारी हो जाता है, इसी कारण भरत ने राम की प्रशंसा करते हुए राजा का धर्मशील होना एक परमावश्यक गुण बताया है।

कहौं साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरमसील नरनाहू ॥
मोहिं राज हठि देहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं ।

इस कथन का निष्कर्ष यह नहीं कि भरत धर्मशील और नीतिज्ञ नहीं, वरन् तात्पर्य यह है कि राजा में यह गुण प्रमुख रूप से होना चाहिए। राम में यह धर्मशीलता अपनी चरम सीमा में मौजूद है। साधु सज्जनों की रक्षा करना और आततायियों को दण्ड देना, राम का स्वभाव है। वन में राक्षसों-द्वारा खाए हुए ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखकर उन्होंने मुनियों से पूछा कि ये

हड्डियाँ किसकी हैं, तब मुनियों के उत्तर को सुनकर उनका हृदय करुणा से भर गया था। तुलसी ने लिखा है :—

निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुबीर नयन जल छाए।।

राम इस प्रकार का अत्याचार नहीं देख सकते थे। निर्दोष, तपस्या निरत और सद्‌वृत्त मुनियों पर आततायियों का अनाचार देखकर राम को बड़ा रोष हुआ और उन्होंने इन अत्याचारियों के नाश की प्रतिज्ञा की :—

निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाय जाय सुख दीन्ह।।

यह राम की वीर भावना है। प्रजा पर अत्याचार करने वाले को दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य है और राम इस कर्त्तव्य से कभी विमुख नहीं हुए।

राम की नीति-धर्म-शीलता और वीरता के कारण ही सुग्रीव से मैत्री हुई। बालि का वध और सुग्रीव का फोड़ना यह राम की सुनीति का परिणाम था। राम धर्मशील तो थे ही, पर नीचों को दण्ड देना भी वे जानते थे। राम ने समुद्र से विनय-भरी नीति का प्रस्ताव किया, पर जब उससे काम न चला, तब दण्ड का भी सहारा लेने में उन्हें किंचितमात्र हिचक न हुई :—

विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, बिन भय होय न प्रीति।।

राम के चरित्र-द्वारा स्पष्ट, नीति के अतिरिक्त तुलसी ने अन्य कथनों में भी राजनीति के सुन्दर सिद्धांतों का निरूपण किया है। ये विशेष रूप से दोहा-वली में मिलते हैं। तुलसी का विचार है कि जो यथार्थ में सच्चा नीतिज्ञ और प्रजापालक राजा है, वह ईश्वर के आदेश को समझता है। राजा जैसा करता है, वैसी ही प्रजा भी हो जाती है। अतः बुद्धिमान राजा को विचार कर, ईश्वर की इच्छा समझकर कार्य करना चाहिए :—

काल विलोकत ईस रुख, भानु काल अनुहारि।
रविहिं राउ, राजहिं प्रजा, बुध व्यवहरहिं विचारि।।

राजा के सचिव, मन्त्री और संगी भले होने चाहिए क्योंकि इनका प्रभाव बुरा और भला राजा पर पड़ता है, तुलसी ने लिखा है :—

जथा अमल पावन पावन, पाइ कुसङ्ग सुसंग ।
कहिय कुवास सुवास तिमि, काल महीस प्रसंग ।।

राजा के गुण

राजा में प्रजापालन के स्वाभाविक गुण होने चाहिए, और भला राजा वही है जो प्रत्येक प्रकार से जन-कल्याण और समृद्धि के कार्य करता है । ऐसा राजा प्रजा के भाग्य से ही मिलता है ।

माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल ।
प्रजा भाग बस होहिंगे, कबहुँ कबहुँ कलि काल ।।

माली का कार्य है, पौधों की काट-छाँट करना, पुराने पत्तों और हानिकारक घासों को काटकर दूर करना और उनको सुन्दर और आवश्यक बाढ़ के लिए रूँधना और पानी से सींचना । राजा का भी कार्य प्रजा के प्रति ऐसा ही होता है । वह अपने जनों के बीच उपस्थित दोषों और बुराइयों को कानून लगा कर दूर करता है, दुष्टों को दण्ड देता है और सब प्रकार से सुरक्षा और समृद्धि के सामान जुटाता है । सूर्य के कार्य पौधों को रूप, रंग, प्रकाश और गर्मी देना, जलवृष्टि करना आदि हैं । राजा के लिए भी सभी प्रकार से प्रजा की उन्नति करना कर्त्तव्य है । इसी प्रकार किसान खेत को जोतता है, बोता है । अन्न उत्पन्न कर सबको खाने को देता है । राजा भी इसी प्रकार से अनुपजाऊ देश को उपजाऊ बनाता है । अरक्षित की रक्षा करता है और सबके पालन का भार ग्रहण करता है । अतः जिस राजा में तीनों तरह के गुण हों । वह सचमुच दुर्लभ है ।

इसी प्रकार तुलसी ने राजा को कर लेने के सम्बन्ध में एक सुन्दर सुझाव दिया है । वे कहते हैं :—

बरषत, हरषत, लोग सब करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा सुभाग तें, भूप भानु सो होइ ।।

राजा को कर इतना कम और इस प्रकार से लेना चाहिए कि कर लेते समय किसी को जान न पड़े, पर उसके बदले में जब सुख, समृद्धि की वर्षा हो

तो सभी देख कर प्रसन्न हों और कहें कि राजा बड़ा दानी और प्रजापालक है। यह शिक्षा हमें सूर्य से प्राप्त होती है। सूर्य थोड़ा-थोड़ा करके पानी सोखता है। उस समय हमको कुछ भी नहीं जान पड़ता, पर जब वर्षा में वही पानी बरसता है तो सारा विश्व तृप्त हो जाता है। अतः अनेक बातों में राजा को प्रकृति के व्यापारों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

राम के जीवन के रूपक-द्वारा तुलसी ने नीचे लिखे दोहे में राजनीति का एक रुचिर तथ्य स्पष्ट किया है :—

भूमि रुचिर रावन सभा, अंगद पद महिपाल।
धरम राम, नय सीय बेल, अचल होत सुभ हाल॥

रावण की सभा में राम और सीता के बल से अंगद ने अपना पद रोपकर रावण के सभी योद्धाओं को ललकार दिया था, पर कोई उनका पद हटा न सका। ऐसे ही धर्म और नीति के बल पर इस पृथ्वी पर राजा अचल रहता है। तुलसी के विचार से राजा को अपनी प्रजा, राज, धन आदि शांत और त्यागी सचिवों के हाथ सौंपना चाहिए। उपयुक्त सचिवों से ही राज्य की प्रतिष्ठा होती है और स्वार्थी, अनुद्योगी, क्रोधी और विलासी सचिवों से सारा राजकाज चौपट हो जाता है। ऐसे ही स्वामी और सेवकों के बीच राज्यानुशासन का भी होना परमावश्यक है। सेवक सदा आज्ञानुसार काम करने वाले हों यह ठीक है, पर राजा को उनके भरण-पोषण और संवृद्धि का ध्यान रखना चाहिए। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए तुलसी ने लिखा है :—

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहेब होई।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहि सोइ॥

त्यागी मन्त्री हो; पर साथ-ही-साथ यह भी आवश्यक है कि ये निर्भय होकर मंगल और अमंगल की बात राजा को बता सकें, तभी राजा और प्रजा का कल्याण सम्भव है। यदि ये राजा के आतंक अथवा भय के वश वही बात कहें, जो राजा को प्रिय हो तो राज्य का नाश निश्चित ही है। गोस्वामीजी ने लिखा है :—

मन्त्री, गुरु अरु वैद्य जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धरम, तन तीन कर होइ वेग ही नास ॥

अतः मन्त्रियों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता अवश्य होनी चाहिए। जो राजा या राजसत्ताधारी, राजनीति के इन तत्वों को दृष्टि में न रखकर मन-मानी करते हैं वे अपनी कुनीति के कारण शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होते हैं। महात्मा तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा है :—

कण्टक करि करि परत गिरि, साखा सहस खजूरि।
मर्रहिं कुनृप करि करि कुनय, सो कुचालि भवभूरि ॥

खजूर की शाखाएँ छाया देने के स्थान में काँटे बिखेरती हैं तो शीघ्र सूख कर गिर भी जाती हैं। ऐसी ही, कुनीति करने वाले लोगों की भी दशा होती है। अतः राजा को कुनीति से सदा बचना चाहिए। शत्रु के सम्बन्ध में कर्तव्य की तुलसी ने बड़ी सुन्दर व्याख्या, एक उदाहरण द्वारा की है :—

शत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाउ।
बूड़त लखि, पग डगमगत, चपरि चहुँ दिसि धाउ ॥

शत्रु को सिर पर अर्थात् बराबर समक्ष रखना चाहिए, जैसे पानी नाव को रखता है, पर जैसे ही उसे निर्बल देखे, उस पर आक्रमण कर, विनष्ट भी कर देना चाहिए। ये सब राजनीति की महत्वपूर्ण बातें हैं। इस प्रकार के अनेक विचार हमें तुलसी की रचनाओं में मिलते हैं।

राम ने इन अनेक राजनीति के तत्वों का पूर्ण ज्ञान करके तब अपना मार्ग निश्चित किया था, जिसमें बल, नीति के साथ-साथ धर्म और शील का प्रमुख स्थान था। राजा को सेना, गढ़, रथ, अस्त्र-शस्त्र-सम्बन्धी वाह्य सामग्री के अतिरिक्त आन्तरिक गुणों की विशेष आवश्यकता होती है, जो राम के पास थे। विभीषण के चिन्तित होने पर राम ने जिस 'विजय रथ' का वर्णन किया है, वह इन्हीं आन्तरिक गुणों का द्योतक है। वे कहते हैं :—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य, शील, दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक दम परहित थोरे। छमा कृपा समता रज जोरे ॥

ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म सन्तोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि शक्ति प्रचण्डा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धरममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ कोउ ताके ॥

अतः विजय के लिए वाहिनी, गढ़, अस्त्र, शस्त्र आदि पर्याप्त नहीं। शौर्य, धीरता, सत्यशील, बल, विवेक, दम्भ, परोपकार, क्षमा, दया, बुद्धि, विज्ञान, निर्मल दृढ़ मन, यम, नियम आदि का पालन तथा साधुसेवा, आवश्यक गुण हैं। इन्हीं से विजयी की शोभा होती है और ऐसा जयी शत्रुहीन होता है।

राम की अपूर्व शक्ति के साथ इन सब गुणों का समावेश होने के कारण ही उनके राज्य की इतनी महत्ता है। राम का राज्य आदर्श राज्य है। आज हम जब राजतन्त्र के पूर्ण विरोधी हैं और पूजा के प्रतिनिधियों द्वारा शासन चाहते हैं, तब भी हम रामराज्य की ही कल्पना करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वह आदर्श राज्य है। राजा भी आदर्श और प्रजा भी आदर्श है। जिन राम के संचालन में हनुमान से योद्धा, रावण से उसकी लंका में लड़ना अपने जीवन की सफलता मानकर यह कहे कि :—

काल करम दिग्पाल, सकल, जग जाल जासु करतल तो।
ता रिपुसों पर भूमि रारि रन जीवन-मरन सुफल तो।
(गीतावली)

उन राम के प्रति प्रजा और सैनिकों का सहज-स्नेह प्रकट हो जाता है। अतः तुलसी का रामराज्य का वर्णन, अत्युक्तिपूर्ण नहीं, वह जीवन का सत्य जान पड़ता है।

रामराज्य समत्व का राज्य था। उसके इस आदर्श को प्रकट करते हुए गोस्वामीजी ने लिखा है—"बयरु न कर काहु सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई ॥" उसमें ऊँच-नीच का भेद न था, आज भी हमारा यही उद्देश्य है। वर्णाश्रम तथा अपना-अपना धर्म सभी पालन करते थे। कोई भी भय-शोक-रोगग्रस्त न था। परस्पर सभी प्रीति करते थे। अल्पायु में मृत्यु नहीं होती

थी। कोई पीड़ा और अनाचार न था। कोई निर्धन और दरिद्र न था। वन और उपवनों के वृक्ष समय पर फल-फूल देते थे। पशु-पक्षी स्वच्छन्द विहार करते थे। पृथ्वी धनधान्य से परिपूर्ण थी। पहाड़ों में अनेक प्रकार के मणियों और बहुमूल्य पदार्थों की खानें प्रकट हुई थीं। बादल समय पर वृष्टि करते थे। सूर्य उतनी ही गर्मी देता था, जितनी आवश्यकता थी। कहने का तात्पर्य यह है कि शासन के पुण्य धर्म और प्रताप से सभी जनता सब प्रकार सुखी थी। किसी को भी दैविक और भौतिक कष्ट नहीं होते थे। यह संक्षेप में रामराज्य का रूप और तुलसी का राज्यादर्श है।

यदि हम ध्यान से देखें तो यही आजकल का हमारा भी राज्यादर्श है। आज बीसवीं शताब्दी में हम राजतन्त्र और साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं। उसका कारण यही है कि राजा और राजतन्त्र निकम्मे हो चुके हैं और जनतन्त्रात्मक राज्य ही एकमात्र उपाय रह गया है। व्यवहार में हमारा उद्देश्य और आदर्श वही है, जो तुलसी का कथन था। हम आज भी रामराज्य में रहने के लिए ललकते हैं और उसे अपनी पावन वसुन्धरा पर फिर से स्थापित करना चाहते हैं। जो भी रामराज्य का मर्म समझते हैं, वे चाहे किसी धर्म के और जाति के क्यों न हों, उसका विरोध नहीं कर सकते, क्योंकि उसमें सबको सच्चा सुख है। हाँ, कपटी, अन्यायी और अत्याचारियों के लिए वह अवश्य दु:खदायी है। अत: यदि हम रामराज्य अर्थात् सुखकर स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें ऋषिकल्प महात्मा तुलसीदास द्वारा बताये राजनीतिक तत्वों को समझ कर व्यवहार में लाना चाहिए। शासक में राम के गुण और जनता में उनकी प्रजा के गुण आना आवश्यक है। तभी हम पुन: सुखी और समृद्ध होने का स्वप्न सच्चा कर सकते हैं।

रामराज्य की धारणा

जिस रामराज्य की स्थापना का आज हम प्रयत्न कर रहे हैं और जिसका स्वप्न गांधी जी ने देखा था, उस रामराज्य की धारणा, तुलसी के मानस की धारणा है। उनकी यह धारणा आदर्शात्मक और पूर्ण है, परन्तु अव्यावहारिक नहीं। आज की परिस्थितियों में तुलसी की धारणा का रामराज्य स्थापित करना एक मनुष्य का काम नहीं है। वरन् वह सभी जनों का कार्य है। उसमें प्रत्येक कार्य और व्यक्ति के लिए अपने-अपने कर्तव्यों के संकेत हैं, जिनका पालन करने पर ही रामराज्य की स्थापना सम्भव हो सकती। यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि तुलसी की धारणा राजतन्त्र पर आधारित होती हुई भी आज हमारे लिए कैसे उपयोगी हो सकती है? उसमें तो—'साधु सुजान सुशील नृपाला। इस अंस भव परम कृपाला।' कह कर राजा को ईश्वर का अंश माना गया है, जो आज की धारणा के लिए नितान्त सम्भव जान पड़ता है। अतएव तुलसी का रामराज्य केवल स्वप्न ही रहेगा, यथार्थ नहीं हो सकता है। वैसे तो जितनी भी आदर्शात्मक धारणाएँ होती हैं, जीवन में उनको उतारना अंशतः ही सम्भव होता है। परन्तु देखना यह है कि उस धारणा में जो कल्पनाएँ हैं वे संभाव्य हैं या नहीं, यदि वे सम्भाव्य हैं तो यदि आज उसका एक अंश पूरा होता है तो कल दूसरा अंश भी पूरा होगा और अवश्य होगा, यदि हमने सच्चाई और लगन से काम लिया। ईश्वर के अंश-रूप राजा को मानने में तुलसी ने अपने समय की आस्था को या पूर्ववर्ती धारणा को व्यक्त किया है आज उसे उस रूप में मानने की आवश्यकता नहीं। फिर भी उसके भीतर जो पदाधिकारी और योग्य साधु-सज्जन पुरुष हैं उनके प्रति सम्मान और विश्वास का भाव प्रकट किया गया है। तुलसी ने जहाँ राजा को ईश्वर का अंश कहा है, वहीं उनकी कृतियों में राजा के लिए ही कुछ अन्य विश्लेषण भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए उनकी दो-एक

पंक्तियाँ देखिए :—

शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय। नृपति सुसेवित पुनि-पुनि सेइय ॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं। नृपति, शास्त्र, जुबती बस नाहीं ॥

\+ + +

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु; गोला पहु पाल ॥

ऐसे ही अन्य कथन हैं, जो सामान्यतया राजा के प्रति तुलसी की अच्छी धारणा को प्रकट नहीं करते। हाँ, राम जैसे राजाओं की बात दूसरी है।

राजा को चाहे किसी देश का राष्ट्रपति, जनता की सम्मान भावना और विश्वास उसके चुने जाने पर आवश्यक है। सजग विश्वास और सद्गुणों की प्रशंसा किसी भी उत्तरदायी व्यक्ति को न्यायपूर्ण सत्कर्तव्य-पथ पर चलने की प्रेरणा देती रहती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। तुलसी का भी राजा के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार था। वैसे तुलसी के रामराज्य के आदर्श राजा राम हैं। उनमें अपने वैभव, ऐश्वर्य या राजपद का मान कभी नहीं है। सम्मिलित उत्तरदायित्व-पूर्ण राज्य-प्रबन्ध उनके शासन की विशेषता है। उनका शासन प्रेम, कर्तव्यपालन और मर्यादा-निर्वाह के बूते पर चलता है। जो स्वभाव से ही धर्म में रत हों, वही वास्तव में शासन सूत्र अपने हाथों में ले सकता है। इस सम्बन्ध में भरत के वाक्य स्मरणीय हैं :—

कहहुँ साँच सब सुनि पतियाहू।
चाहिय धरमसील नर नाहू ॥

धर्म-शीलता में राम की बराबरी कौन कर सकता था ? जिसने घोषित राज्याभिषेक के समय बनवास का संकेत पाकर माता-पिता की आज्ञा पालन के लिए चौदह वर्ष वन में रहने का व्रत लिया। भाई तथा समस्त अवधवासियों के चित्रकूट में वापिस लाने के लिए जाने पर भी जो सत्य से न डिगा। आततायी राक्षसों की दुष्टता और उनके द्वारा खाये ऋषि-मुनियों की अस्थि-ढेरी को देखकर उन्हें निर्भय करने का प्रण किया। किष्किन्धा और लंका के राज्य जीतकर भी उन पर अपना अधिकार न करके साधु प्रकृति वाले प्रजापालक उत्तराधिकारियों को सौंप दिया, उन राम से बढ़ कर और कौन राजा हो

सकता है ? अतः तुलसी की दृष्टि से राजा वही हो सकता है, जो राम जैसा त्यागी हो, जिसका स्तवन करते हुए तुलसी ने अयोध्याकांड में लिखा है :—

प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतस्तथा न मम्ले बनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ।।

राजा के लिए और भी गुण आवश्यक हैं, जो राम में विद्यमान हैं । राजा को बलवान, सुन्दर, धीर, शान्त, गम्भीर, उदार, शीलवान और स्नेह-पूर्ण होना चाहिये । अतः तुलसी के रामराज्य की पहली विशेषता यह है कि जिसके हाथों में देश का शासन हो उसको राम के समान सद्गुण-सम्पन्न होना चाहिए ।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि कोई भी राम के समान सद्गुण-सम्पन्न न हो तब किसके हाथ में शासनसूत्र देना चाहिये ? तुलसी ने इस प्रश्न का भी उत्तर दे दिया है । जब राम बनवास की अवस्था में हैं तब अयोध्या का शासन सूत्र भरत के हाथ में है । भरत के भीतर राम की समस्त विशेषताएँ और गुण नहीं, परन्तु एक बात जो भरत के समान, प्रत्येक सज्जन अपने भीतर जाग्रत कर सकता है । वह राम के गुणों को हृदयङ्गम करना है । इसके लिए आवश्यक यह है कि वह राज्य को राम की थाती समझ कर काम करे । राम वे हैं जो सभी में रमे हुए हैं । और तुलसी ने अपने मानस में उन्हें पूर्ण साकार भी कर दिया । अतः उनकी थाती समझने में किसी को कठिनाई भी न होनी चाहिए । राम जनता में रमे हैं । अतः वह राज्य जनता की थाती है; यह भाव ऐसे शासक के लिए आवश्यक हैं । भरत ऐसा ही कहते हैं ।

जटा जूट सिर मुनि पट धारी । महि खनि कुश साथरी सँवारी ।।
असन बसन बासन व्रत नेमा । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ।।
नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति ।।

अतः शासक के लिए आवश्यक है कि यह बात सोच कर कि राम इस समय क्या करते, अपना कर्तव्य पूरा करें । इस प्रकार का राज्य होने पर रामराज्य की स्थापना कठिन नहीं । यह एक व्यक्ति के लिए नहीं, जितने भी अधिकारी वर्ग हैं, सबके लिए आवश्यक है । राम के चरित्र को देखकर राजा के अन्य अनेक कर्तव्य समझे जा सकते हैं ।

अब प्रजा या जनता के कर्तव्य आते हैं। एक पुरानी उक्ति है 'यथा राजा तथा प्रजा:' अत: पहले सुधरना शासक को आवश्यक है। जनता और प्रजा को नहीं। वह तो अपने आप सद्गुणों को देख कर सुधरेगी। जिन राम के गुणों का वर्णन तुलसी ने अपने समस्त 'रामचरित मानस' में किया है। उनकी प्रजा की भी विशेषताएँ हैं। उनमें परस्पर वैर नहीं, द्वेष नहीं अतएव एक दूसरे को घटकर या बढ़कर समझने की भावना नहीं। समस्त विषमता नष्ट हो गयी। तुलसी कहते हैं :—

वरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भव सोक न रोग।।

वर्ण और आश्रम-व्यवस्था की पूर्णता तभी देखने को मिलती है, जब कि विषमता दूर हो जाये। अन्यथा एक वर्ण अथवा आश्रम के लोग अपने को बढ़-कर समझने लगते हैं। भारतवर्ष में जो आजकल और पिछले युगों में वर्णाश्रम व्यवस्था दूषित हो गयी, उसका कारण यही वैषम्य' वैमनस्य और ईर्ष्याद्वेष का भाव है। रामराज्य के वर्णों या आश्रमों में व्यक्तियों में यह बात नहीं। अत:, अपने धर्मों और कर्त्तव्यों में लोग संलग्न हैं।

इसके अतिरिक्त सभी स्त्री और पुरुष गुणी चतुर हैं। सब ज्ञानवान हैं। सबके भीतर कृतज्ञता का भाव है तथा कपट-चातुरी नहीं। सभी लोग उदार और परोपकारी हैं, अपने स्वार्थ में लगे रहने वाले नहीं। स्त्री और पुरुष में परस्पर स्नेह भाव है। सभी गुण-ग्राहक और दोष-विकारों को दूर करने में प्रयत्नशील हैं।

इस प्रकार राजा प्रजापालक और सद्गुण-सम्पन्न है। समाज के विकास और सुख एवं समृद्धि का जो सीधा मार्ग है, उसका अवलंबन सभी लोग सच्चाई के साथ कर रहे हैं। राजा और प्रजा की इस सच्चाई और प्रेम-भाव के कारण सभी की जो स्थिति है, वही राज्य का मुख्य आकर्षण है। रामराज्य की यह तीसरी विशेषता है कि सभी जनता सुखी और समृद्ध है। इस सुख और समृद्धि का वर्णन तुलसी के शब्दों में सुनिए :—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम-राज नहि काहुहिं व्यापा।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज सरीरा।।

नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
रामराज्य कर सुख संपदा। बरनि न सकै फनीस सारदा ॥

यह सुख और समृद्धि, राजा और प्रजा दोनों के सद्व्यवहार का परिणाम है। आजकल हम भ्रमवश समझते हैं कि सद्व्यवहार, सुख-समृद्धि का परिणाम है। वास्तव में बात उल्टी है। रामराज्य में राम ने अपने जीवन से सबको इसी सद्व्यवहार की शिक्षा दी और सभी ने उसे ग्रहण किया है। अतएव समृद्धि और सुख, सद्व्यवहार का परिणाम है, प्रकृति भी उस सुख-समृद्धि में योग देती है, देखिए :—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
कूजहिं खगमृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा ॥
लता विटप माँगे मधु चँवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
विधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतइन काज।
माँगे वारिद देंहि जल, रामचन्द्र के राज ॥

यह राम-राज्य का प्रताप है। नदियों में बाढ़ें आना, अकाल पड़ना, टिड्डी आना आदि ईति-भीति रामराज्य में नहीं। ये बातें तुलसी के विचार से व्यतिक्रम के लक्षण हैं। राम के शासन काल में सभी कुछ व्यवस्थित है। अतएव प्रकृति का क्रम भी यथापेक्षित है, विपरीत नहीं। चेतन की मर्यादा और शक्ति तथा उसका चरित्र, जड़ प्रकृति को व्यवस्थित करने की पूरी शक्ति रखता है और यदि चेतन ही गड़बड़ है, तो जड़ प्रकृति तो गड़बड़ होगी ही। रामराज्य का चेतन तत्व अपनी मर्यादा को सँभाले है। फलस्वरूप जड़ अनुकूल है, विध्वंसकारी नहीं। यदि इस प्रकार प्रकृति के तत्व अनुकूल रहें और चेतन मानव, द्वेष और वैर भाव को छोड़कर अपनी विध्वंसात्मक दृष्टि का नाश करके, स्नेह भाव को जाग्रत करें, तो आज भी रामराज्य धरती पर उतर सकता है। वह कोई बाहर से आयी वस्तु नहीं, वरन् हमारे बनाने से बनने वाली स्थिति है। अतएव हमारा कर्तव्य है कि तुलसी की धारणा का रामराज्य फिर से पृथ्वी पर लाने का सच्चा प्रयत्न करें।

●

गोस्वामी तुलसीदास का समाजवाद

आधुनिक संसार विभिन्न 'वादों' का लीला क्षेत्र है। ये 'वाद' प्रमुखतया राजनीतिक हैं, जो हमारे साहित्य, समाज और संस्कृति सभी को प्रभावित कर रहे हैं। हम प्राचीन काल में इन वादों का प्रचुर प्रभाव देखते हैं। भारतीय चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद, मायावाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद, आदि; साहित्य के क्षेत्र में रसवाद, ध्वनिवाद आदि के नाम सुनते हैं, किन्तु समाज और राजनीति के क्षेत्र में अनेक वादों की चर्चा अधिक नहीं है। कुछ ऐसा जान पड़ता है कि पूर्ववर्ती जन-साधारण इन वादों के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते थे। अत: हमें प्राचीन युग में इनकी वैसी धूम नहीं दिखायी देती जैसी आजकल है। किन्तु, इसका यह निष्कर्ष न निकालना उचित नहीं कि आज के इन 'वादों' में कुछ ऐसी मौलिक खोज और कल्पनाएँ हैं, जो हमें उस समय देखने को भी नहीं मिलतीं। समस्त भारतीय साहित्य में 'समाजवाद' आदि के तत्व किस रूप में मिलते हैं, इस पर लिखने के लिए अधिक अवकाश की अपेक्षा है और इस प्रकार के कार्य को कोई बहुत बड़ा विद्वान पुरुष ही कर सकता है। यहाँ पर मेरा उद्देश्य केवल यह संकेत कर देना है कि हमारे हिन्दी साहित्य में अतिशय प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भी समाजवादी धारणाओं के मूलभूत तत्व ही नहीं, वरन् विकसित आदर्श विद्यमान् मिलते हैं। साथ ही साथ मेरा यह भी विश्वास है कि इन आदर्शों पर आकर 'समाजवाद' भारतीय विशेषता को अपनाता हुआ भी, सुदृढ़ और स्थायी साम्य और विश्वप्रेम को विकसित करता है।

गोस्वामी तुलसीदास मर्यादावादी थे, किन्तु रूढ़िवादी नहीं। लोक-परम्परा और वेद के मंगलकारी नियमों को पालन करने में, और प्रतिष्ठित गुरुजनों का अनुशासन मानने में वे मर्यादावादी थे। और इस मर्यादावाद की अवहेलना आज भी हम नहीं कर सकते। किसी भी समाज के लिए, उसके विकास और

स्थिति के लिए, आवश्यक नियमों का निर्वाह और गुरुजन तथा अधिकारी जनों की आज्ञा का पालन आवश्यक है; अतः केवल इन बातों को देखकर ही हमें उनकी धारणाओं को हेय नहीं समझना चाहिए। हम आधुनिकता के आवेश में आकर, जो प्राचीन है उस सभी के प्रति यदि द्वेष भाव रखने लगें, तो यह रूढ़िवादियों की हठधर्मी से किसी प्रकार कम नहीं। हमें सदा विवेक की दृष्टि रखनी चाहिए और जहाँ कहीं भी गुण मिल सकें उन्हें ग्रहण करना चाहिए। यों तो गुण-दोष संसार की सभी बातों के भीतर मिल ही जाते हैं। संसार में न तो कभी पूर्ण दोषहीन गुण की स्थिति रही है और न समान गुण-हीन अवगुण ही की। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि :—

जड़ चेतन गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

अतः आवश्यक यही है कि आँखें खोलकर नवीन में जो कुछ भी हितकर है उसे अपनावें और प्राचीन में भी जो हमें सावे हुए है और तथ्यपूर्ण है उसे ठुकरा न देवें। साहित्य के सम्बन्ध में कही गयी इसी प्रकार की उक्ति का अनुसरण हमारे लिए आवश्यक है। उक्ति यह है :—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, चापि काव्यं नवमित्यवद्यम।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते, मूढ़ः पर प्रत्ययनेयबुद्धिः॥

इस प्रकार खुली दृष्टि और उदार चित्त से अपनी विवेक बुद्धि के आधार पर ही किसी वस्तु का ग्रहण और त्याग करना चाहिए।

आजकल प्रचलित शासन तंत्रों में प्रमुख राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, जनतन्त्र, समाजवाद और साम्यवाद आदि हैं। इनमें राजसत्ता पर विश्वास हमारा उठ गया है, क्योंकि उसके अनुसार मनुष्य-मनुष्य के भीतर भेद और विषमता की भावना विशेष तीव्र होती है। प्रजातन्त्र, राजतन्त्र की प्रतिक्रिया है, किन्तु उसका कोई स्थान नहीं, क्योंकि प्रजा शब्द राजा शब्द के साथ ही सम्बन्धित है। जब राजा नहीं तो 'प्रजा' के रूढ़ अर्थ में नहीं चल सकता। अन्य अर्थों जैसे सन्तान, पुत्र आदि में चाहे चलें। जनतन्त्रों के अन्तर्गत ही आज के शासन विधानों का आधार है। इनमें से किसी में प्रत्येक के राजनीतिक और सामा-

जिक स्थिति के साम्य पर जोर दिया जाता है और कहीं-कहीं नहीं। यही दशा अधिकार-साम्य की है। किन्तु इसके मानने में हमें संकोच नहीं होना चाहिए कि धीरे-धीरे हम मनुष्यमात्र को समान समझने की सुदृढ़ नींव डालने का प्रयत्न कर रहे हैं और इस दिशा में सबसे बढ़कर कार्य 'समाजवाद' का है।

समाजवाद का विस्तृत विवेचन भी यहाँ पर मेरा अभिप्राय नहीं किन्तु तुलसी की समाजवादी धारणा उनके राज्यादर्श में व्याप्त इन तत्वों को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके भीतर आने वाली आधारभूत बातों का उल्लेख कर दिया जाय। अतः इस सम्बन्ध में प्रमुख बातें ये हैं :—

(१) सभी व्यक्ति समान हैं। कोई किसी से घट बढ़कर नहीं अतः सभी को समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

(२) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता भर काम करना चाहिए।
(३) प्रत्येक को उसके कार्य के अनुसार वस्तुएँ प्राप्त होनी चाहिए।
(४) जो काम न करेंगे, उन्हें खाना पाने का कोई अधिकार नहीं।
(५) प्रत्येक का काम समाज के हित के लिये होना चाहिए।
(६) सम्पत्ति व्यक्ति की नहीं, वरन् समाज की है।
आदि-आदि।

इनमें से हम एक-एक पर विचार करेंगे।

सबसे पहली बात है सबको समान समझना। तुलसी के रामचरित मानस में ही नहीं; वरन् सन्त कवियों की लगभग सभी रचनाओं में समानता का भाव विद्यमान है। मनुष्य-मनुष्य में भेद समझना, यह भारतीय दृष्टि से मूर्खता है। गीता का स्वयं कथन है :—

"शुनि चैव श्वपाके च पंडिता समदर्शिनः"

पण्डित की दृष्टि में भेदभाव नहीं होना चाहिये। तुलसी के रामचरित मानस में वर्णित रामराज्य के अन्तर्गत यही भेदभावहीनता ही नहीं, द्वेष-भावहीनता तक विद्यमान है। तुलसी कहते हैं :—

रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब शोका।।
बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

कोई किसी से बैर नहीं करता, क्योंकि बैर करने का प्रधान कारण विषमता है भी नहीं, साथ ही साथ हृदय के भीतर भी विकार नहीं जो अकारण ही द्वेष का बीज बो सकता है।

दूसरी बात यह है प्रत्येक व्यक्ति योग्यता के अनुसार काम करे। यह बात भी रामराज्य में है और उतना ही नहीं, इससे भी आगे कि सभी पुण्य-कार्य अर्थात् लोक-कल्याण के काय करते हैं। सभी गुणवान् और पण्डित है, कोई मूर्ख और आलसी नहीं, देखिए :—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब मुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।

इससे प्रकट होता है कि सभी स्थिति में सभी समान है और सभी कर्मण्य हैं। जब उनमें अच्छे लक्षण हैं तो वे आलसी या कामचोर नहीं हो सकते। साथ ही साथ इसी बात की पुष्टि 'गीतवली' के भी एक पद से होती है।

बन ते आइकै राजा राम भये भुआल।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सबकाल।।
मिटे कलुष कलेस कुलषन, कपट कुपथ कुचाल।
गये दारिद दोष दारुन, दंभ दुरित दुकाल।।
कामधुक महि कामतरु, उपल मनिगन लाल।
नारि नर देहि समय सुकृती, भरे भाग सुभाल।।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि सभी सुकृत अर्थात् अच्छे कर्म करने वाले थे अत: योग्यतानुसार कर्म करना तो, निश्चित ही है। साथ ही ये कार्य उनके व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित न होकर, समाज और लोक की कल्याण-भावना से मुक्त थे। इसका प्रमाण ऊपर आये "सुकृती" शब्द से भी मिलता है और नीचे की पंक्तियों में भी :—

सब उदार सब पर उपकारी । विप्र चरन सेवक नर-नारी ।।
सब निर्दभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।।

इससे यह पता लगता है कि उस समय के मनुष्यों के कार्यों का लक्ष्य व्यक्तिगत स्वार्थ न होकर समग्र समाज का कल्याण करना था और जब प्रत्येक के काम परोपकार और समूचे समाज के हित के हैं, तब व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई महत्व नहीं है । कार्य समाज हित के लिए है, तो उसका परिणाम, सम्पत्ति भी समस्त समाज के उपयोग के लिए है ही । इस प्रकार हमें पाँचवीं और छठवीं बातों के प्रमाण मिल जाते हैं ।

जो जितना करेगा, उसे उतना ही मिलेगा और न करने वाले को कुछ न मिलेगा, इस सम्बन्ध में विचार करने पर यही कहना पड़ता है कि जहाँ पर सभी अच्छे कर्म करने वाले हैं, वहाँ पर यह प्रश्न ही नहीं उठता । प्रत्येक को उसके कर्म के अनुसार ही वस्तुएँ प्राप्त होंगी, यह बात न्याय पर निर्भर करती है और त्यागी एवं न्यायी अधिकारियों के होने पर ही चल सकती है । राम जैसे न्यायप्रिय और त्यागी के राज्य में इसमें कोई कमी नहीं हो सकती ।

इसके अतिरिक्त इन बातों से सम्बन्धित प्रश्न तब उठता है जब देश गरीब और निर्धन हो । यदि देश पूर्ण समृद्ध और सम्पत्तिशाली है तो वस्तु की कमी किसी को नहीं रहती, साथ ही एक बात और होती है कि मनुष्य इन दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन में व्यस्त न रहकर, अपने बौद्धिक अथवा आत्मिक विकास के कार्य करता है । रामराज्य में देश समृद्ध और वैभवशाली है, इसका वर्णन देखिए :—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ।।
लता विटप माँगे मधु चुवहीं । मन भावतो धेनु पय स्त्रवहीं ।।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भई कृतयुग की करनी ।।
प्रगटी गिरिन्हि विविध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ।।
सागर निज मरजादा रहहीं । डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं ।।

यह तो सर्वजन सुलभ भरण पोषण अलंकरण के उपयोग की वस्तुएँ थीं, जिन्हें यथावश्यक रूप से सभी प्राप्त करते थे । साथ ही साथ अयोध्या के

निवासियों की सम्पत्ति वैभव का दृश्य भी बड़ा आकर्षक है। तुलसी ने लिखा है :—

बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप विराजहिं।
मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।
मनि खंभ भीति विरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचै।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बई बज्रन्ह खचै॥

यह जन समृद्धि का दृश्य है। रामराज्य की जनता को आवश्यकतानुसार वस्तुएँ सुलभ थीं। वस्तु सुलभता प्रकृति और मानव समाज दोनों के द्वारा संपादित होती थीं। प्रकृति के क्षेत्र में आवश्यक वस्तुएँ फलफूल, अन्नादि सुलभ थे, इसका संकेत ऊपर मिल चुका है, साथ ही साथ इन वस्तुओं के उत्पादन में सहायक तत्व भी नियमित और अनुकूल थे। देखिए तुलसी कहते हैं—

विधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतनहि काज।
माँगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

इस प्रकार सभी लोग सब प्रकार से सुखी थे। रामराज्य की विशेषता भी। इससे बढ़कर और समानता क्या हो सकती है और समाज के सम्पत्ति पर अधिकार का प्रमाण और क्या हो सकता है कि बाजार में प्रत्येक को आवश्यकतानुसार वस्तु मिल सकती थी, उसके लिए मूल्य चुकाना आवश्यक न था।

'बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिन गथ पाइये।'

आजकल हमारे देश के असंख्य व्यक्तियों को कुछ विदेशी शासन-प्रणाली में इसीलिए बड़ा आकर्षण है कि वहाँ लोगों को बिना दाम दिये मुफ्त चीजें मिल जाती हैं। पर अपनी प्राचीन व्यवस्था में भी ऐसी बात थी। आजकल ही देश की निर्धनता के कारण यह बात है अन्यथा रुपये पैसे और मूल्य चुकाने की बात हमारी गाँव व्यवस्था में अधिक महत्व न रखती थी। वहाँ पर तो यदि एक की आवश्यकता से अधिक वस्तु है, तो उसे लोगों को बाँट देना,

परम्परागत नियमों के अन्तर्गत रहा है। यह तो आज के अभाव के कारण ही है कि इतनी अधिक लोलुपता बढ़ गयी है।

रामराज्य के अन्तर्गत कार्य का भी महत्व था। इस पर पहले कहा जा चुका है, किन्तु इस प्रसंग में इतना और कहना है कि चाहे कोई कितना ही बड़ा पद का हो वह भी कार्य करता था इसका भी प्रमाण हमें मिलता है। सीता की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं। जनेच्छा-द्वारा, एवं नियमतः उनके पास सेवक और दासियाँ थीं, फिर भी वे अपना और घर का काम स्वयं करती थीं। देखिए :—

यद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥

इस प्रकार समान स्थिति, समान योग्यतानुसार कार्य और सम्पत्ति विभाजन आदि 'समाजवादी' धारणा की प्रमुख बातें हमें तुलसी के सामाजिक आदर्श में देखने को मिल जाती हैं। और हम कह सकते हैं कि तुलसी की समाज-सम्बन्धी धारणा बड़ी गहरी नींव पर रखी हुई थी। वास्तव में यदि हम विचार कर देखें तो कह सकते हैं कि तुलसी मानव जीवन की सामाजिक व्यवस्था पर ही आस्था रखने वाले व्यक्ति थे। राजकीय व्यवस्था पर उनका उतना विश्वास न था जितना सामाजिक व्यवस्था पर। तुलसी के राजा राम भी प्रारंभ से अन्त तक समाज और उसकी एक छोटी इकाई परिवार के पुरुष हैं प्रजा के राजा नहीं। दशरथ भी अपनी प्रबल इच्छा राम को राज्य देने की होते हुए भी, सब की सम्मति के अनुसार ही काम करते हैं :—

जो पांचै मत लागैं नीका। देउ हरषि हिय रामहिं टीका॥

इससे यह प्रकट है कि यदि सब का मत न हो, तो न दिया जाये और किसी दूसरे को भी दिया जा सकता हैं। इन प्रकार से उस समय की सामाजिक व्यवस्था मूलरूप से पंचायत या जनमत पर आधारित थी, मनमानी और स्वेच्छा पर नहीं।

ऐसा इसीलिए संभव था कि उस समय व्यक्ति के भीतर त्याग की प्रबल भावना थी। लोलुपता और धनमद न था और विशेष रूप से दशरथ, राम,

भरत जैसे व्यक्तियों में। जब राज्य तक ठुकराया और त्यागा जा सकता है, तो अन्य वस्तुएँ तो बहुत ही साधारण हैं। राम के हृदय में यह त्याग-भावना, प्रारम्भ से ही विद्यमान थी। जिस समय राज्याभिषेक की बात ही चली थी, उसी समय उनके हृदय में चिन्ता और मन में तर्क उपस्थित हुआ था कि :—

जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
विमल वंश यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाय बड़ेहिं अभिषेकू।।

यह तर्क-वितर्क मन में त्याग और समानता के भाव के कारण ही उपस्थित हुआ था, नहीं इस प्रकार का वैभव मिलने पर ऐसा तर्क तो दूर रहा और ऊपर से उसे समग्र हड़प कर जाने के लिए षड़यन्त्र और हत्याएँ तक होती हैं। इससे हमें उस समय की सामाजिक चेतना से युक्त दृष्टिकोण का प्रमाण मिलता है।

आजकल हम समान आर्थिक आधार और राजनीतिक अधिकार सुलभ करके मनुष्य समाज में समता लाना चाहते हैं, उसके भीतर 'समाजवाद' की स्थापना करना चाहते हैं, किन्तु के केवल बाह्याधार की ही समानता से चिरस्थायी समत्व कायम नहीं किया जा सकता। इसके भीतर आन्तरिक साम्य की प्रतिष्ठा भी आवश्यक है और रूसो, कार्लमार्क्स, लेनिन आदि महात्मा विचारकों के द्वारा प्रतिष्ठित यूरोपीय साम्य या समाज भावना के साथ-साथ भारतीय आधार पूर्णतः अपेक्षित है। इसी आधार की प्राप्ति के लिए पन्द्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के भक्तों और संतों ने आन्दोलन चलाया था। उनके भीतर आत्म-संयम, साधना और सबके प्रति समान प्रभाव प्रमुख रीति से विद्यमान थे, जो मनुष्य-मनुष्य में समानता का भाव स्थापित करके समस्त मानव समाज की सेवा का उपदेश देते थे। किन्तु उन्होंने भी आन्तरिक साम्य—वास्तविक ऐक्य, द्वैत बुद्धिहीनता को प्राप्त करने के लिए, सर्वान्तिर्यामी ईश्वर की अनुभूति करने की बड़ी आवश्यकता समझी थी। जब हम यह समझते हैं कि एक सर्वशक्तिमान ज्योति या चेतन शक्ति सबके भीतर व्याप्त है, तब हम यथार्थ में सबको समान समझते हैं और ध्यान रखते हैं कि किसी व्यक्ति का अपमान करना, उस शक्ति का अपमान है जो उसके भीतर

भी है। अतः कबीर ने सामाजिक शिष्ट व्यवहार की जागृति के लिए कहा था कि :—

घट घट में वह साईं रमता,
कटुक बचन मत बोल रे !

अतः यदि हम व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना की बात छोड़ दें तो भी सामाजिक एकता के लिए ईश्वर की आवश्यकता है। ईश्वर का सामाजिक महत्व है। यदि इस प्रकार सर्वत्र ईश्वर की व्याप्ति का अनुभव समाज के प्रत्येक व्यक्ति को हो जाय, तो अस्थायी सामाजिक समानता स्थायी हो सकती है। संत और भक्तों की दृष्टि तो विश्वप्रेम से पूर्ण थी और वे उस ईश्वर का अस्तित्व चेतनों में नहीं, जड़ के भीतर भी करते थे। तुलसी ने इस प्रकार हमारे आन्तरिक सामंजस्य को प्रेरित करते हुए लिखा है—

जड़ जेतन जग जीव सत सकल राममय जानि।
बन्दुहु सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

हम कह सकते हैं कि इन सन्तों और भक्तों ने अपने अत्यन्त ऊँचे आदर्श और गहरी साम्य भावना के आधार पर इतनी लम्बी दासता के बीच भी हमारे चरित्र, गुणों और संस्कृति की रक्षा की है। और आज भी हमें मार्ग दिखा रहे हैं।

इन बातों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय समाज की रचना, समान आर्थिक आधार और राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ आध्यात्मिक एकता के आधार पर होनी चाहिए। इसके बिना होगा यही कि जब तक चरित्रवान् अधिकारी हमारे इस आधार को लेकर चलते हैं, तभी तक यह साम्य कायम हो सकेगा और हमारे देशगत, जातिगत, वर्गगत स्वार्थों और संकीर्ण विचारों के सामने वास्तविक विश्वप्रेम विकसित नहीं हो पायेगा। हम अपने विचारों को दूसरों पर आरोपित करने के लिए न जाने कितनों की हत्या कर देते हैं जिसका दुष्परिणाम यही होता है कि विरोधी दलों के भीतर दल-प्रेम रहता हैं, मानव-प्रेम नहीं। अतः वस्तविक साम्य के भीतर इस स्थायी मानव-प्रेम और विश्व-प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए।

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि राम ने भी रावण का संहार किया, वह क्यों ? तो इसके उत्तर में हमें यही कहना है कि वहाँ निर्विशेषतः शत्रु का संहार नहीं; वरन् मानवजाति के पीड़क और नाशक रावणादि राक्षसों का ही है जिनका जीवन दूसरों के नाश पर निर्भर करता है। विभीषण आदि के प्रति उनका द्वेष-भाव नहीं।

यथार्थ में कोई भी तन्त्र या व्यवस्था क्यों न हो यदि उसके भीतर आन्तरिक चेतना, सचाई, ईमानदारी, सहृदयता को जाग्रत करने वाला कोई तथ्य विद्यमान है, तब तो कार्य चल सकता है, अन्यथा नहीं। इसी की पूर्ति के हेतु उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म-पालन का इतना महत्व समझा था। यह वर्णाश्रम-धर्म सामाजिक साम्य के आधार पर था, कोई किसी से घट-बढ़ कर है, इस भावना पर नहीं। वर्ण-व्यवस्था, अनिश्चित रूप में सभी देशों में है और वह जन्म से नहीं, कर्म से होनी चाहिए, यह हमें आज भी अमान्य नहीं है, किन्तु आज वह इतनी विकृत हो गयी है कि हम उन शब्दों का नाम तक भी लेना ठीक नहीं समझते, किन्तु बिना नाम दिये हुए भी सामाजिक कार्य करने वालों के विभिन्न वर्ग ही इसके भीतर हैं। बुद्धिजीवी, सैनिक, व्यापारी और समाजसेवक आज भी हैं। आश्रम-व्यवस्था, हमारी जनसंख्या और स्वास्थ्य को ठीक और सन्तुलित रखने के लिए आवश्यक है। साथ ही साथ सम्पत्ति और वैभव के प्रति त्याग भावना जगाने के लिए भी अपेक्षित है। अन्यथा वृद्धावस्था में भी अधिकारलोलुपता और सम्पत्ति जोड़ने का मोह नहीं छूटता और जिसके परिणाम-स्वरूप नवयुवक समुदाय का भी पतन होता है। अतः वर्णाश्रम व्यवस्था किसी-न-किसी रूप में हमारे समाज के लिए उपयोगी है। हाँ, उसमें आवश्यक परिवर्तन उपेक्षित है।

तुलसी के समाजवाद के अन्तर्गत समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति व्यवहार का शिष्ट, त्यागपूर्ण, मधुर और आदर्श होना आवश्यक है और इस सम्बन्ध में राम और भरत का चरित अनुकरणीय है। राजा भी समाज का उसी प्रकार एक सदस्य है जैसे पिता, पुत्र, परिवार के और इस प्रकार समाज के। किन्तु पिता-पुत्र के सम्बन्ध की अपेक्षा राजा-प्रजा का सम्बन्ध क्षीण और क्षण-

भंगुर है। प्रजा अपने अधिकार से उसे हटा सकती है, अतः राजा को भी समाज के सदस्य के रूप में अपना कर्तव्य निभाना है इसीलिए राजा के लिए पुत्रवत् प्रजापालन का आदर्श सामने रखकर केवल अधिकार-द्वारा सम्बन्ध सूत्र को न छोड़कर स्नेह-द्वारा उसको जोड़ दिया है। गुणों से हीन और उदात्त गुणों-वाले व्यक्तियों के बीच की विशेषता यह है कि जहाँ पर हीन व्यक्ति अपने को घटकर समझता है (जो उसकी नम्रता की द्योतक है), वही उच्च व्यक्ति अपने को उच्च नहीं समझता, वरन् बराबर समझता है, जो उसकी शिष्टता और स्नेह भावना का द्योतक है। वशिष्ट को निषाद दूर से प्रणाम करता है, पर वशिष्ठ उसे बरबस गले से लगा लेते हैं—

"बरबस रामसखहिं इमि भेंटा। जिमि महिलुठत सनेह समेटा ॥"[१]

'महि-लुंठत सनेह' समेटने में वशिष्ट की स्नेहपूर्ण तत्परता और शीघ्रता स्पष्ट होती है।

इस प्रकार तुलसी का समाज का आदर्श यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए कार्य न करके सामाजिक नियम और मर्यादा पालन के लिए कार्य करता जिसका परिणाम यह होता है कि समाज का आदर्श-संघटन भी रहता है, और व्यक्तिगत, स्वार्थपूर्ण प्रयत्न किये बिना ही सभी लोग, सम्पत्तिवान, प्रसन्न और सुखी रहते हैं। यह संक्षेप में तुलसी के समाजवाद के आदर्शों और परिणामों, नियमों और व्यवहारों का निर्देश हुआ। तुलसी के सामाजिक आदर्शों की समस्त कल्पना, चाहे हमें आज की परिस्थिति में पूर्ण रीति से मान्य न हो, किन्तु इतना हमें स्वीकार ही करना पड़ेगा कि उनके आदर्शों में आधुनिक 'समाजवाद' के बीज तत्व विद्यमान हैं और भारतीय प्रकृति के अनुकूल उसके संकेत और तत्व आज भी हमारे समाज-निर्माण में अत्यधिक सहायक हो सकते हैं।

●

लोक-जीवन और संस्कृति

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने का वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना नहीं था, वरन् उसके आदर्श की ओर संकेत करना था। इसलिए राम के चरित्र का वर्णन करने में प्रधान रूप से लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कहीं भी नहीं मिलता, साथ ही साथ अपने काव्य-सम्बन्धी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'प्राकृत जन' के गुणगान न करने का भी संकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा में बहुत विस्तारपूर्ण, व्यापक और यथार्थ तथा निर-पेक्ष जन-जीवन के वर्णन की आशा हम कर ही नहीं सकते, किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना में जन-जीवन-सुलभ वस्तुओं को देना है। इसलिए गौणरूप में प्रकारान्तर से लोक-जीवन की झलक हमें मिल जाती है। पर, संस्कृति जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है, अतः उसका चित्रण गोस्वामी जी के ग्रन्थों में रामचरित के माध्यम से बराबर हुआ है।

लोक-जीवन बड़ा व्यापक है। इसके दो पक्ष—ग्राम्य जीवन और नागरिक जीवन—माने जा सकते हैं और जब हम समस्त लोक-जीवन को एक साथ लेते हैं तो हमारे सामने न तो विशिष्ट ग्राम्य जीवन ही आता है और न विशिष्ट नागरिक जीवन ही; वरन् उसके भीतर दोनों ही समाजों में चलते हुए जीवन की विशेषताएँ सामने आती हैं। लोक-जीवन के भीतर प्राय: ऐसी बातों का ही चित्रण रहता है, जो ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकार के समाजों के भीतर देखने को मिलती हैं। हम यह कह सकते हैं कि लोक-जीवन न तो ग्राम्यता से युक्त है और न नागरिक वैयक्तिकता से। इसके भीतर ग्राम्य नागरिकता है। यदि हम और अधिक स्पष्ट करें तो यह कहते हैं कि ग्राम्य जीवन सामुदायिक जीवन है। प्राय: वहाँ के कामों में ग्रामों के समस्त जन सम्मिलित होते हैं; यदि कोई उत्सव, पर्व या त्योहार है अथवा किसी के यहाँ कोई सांसा-रिक समारोह है, तो गाँवों का सारा समाज उसमें सम्मिलित होगा। किसी

एक व्यक्ति की आपत्ति, विपत्ति में भी सभी सम्मिलित होते हैं। साथ ही साथ सम्पत्ति और वैभव भी यहाँ पर प्रायः सामाजिक रूप में होता है। यदि कोई वस्तु एक के यहाँ अधिक उपजी तो वह सबको बाँट कर उसका उपभोग करता है। इस प्रकार दूसरे के सुख-दुख में अपने सुख-दुख का अनुभव करना ही ग्राम्य-जीवन की विशेषता है। नगर के जीवन में एकान्तिक दृष्टिकोण प्रधान रहता है। वहाँ पर एक ही घर के रहने वाले एक दूसरे को नहीं जानते। अतः यह अलगाव का भाव नागरिक जीवन को विशेष बुद्धिजीवी बना देता है। ग्राम्य-जीवन में बुद्धि का उतना कार्य नहीं जितना कि भावना का। तुलसीदास ने अपने लोक-जीवन के चित्रण में ग्राम्य और नागरिक विशेषताओं का सामंजस्य स्थापित किया है।

इसका बड़ा स्पष्ट प्रमाण हमें राम के चरित्र में प्राप्त होता है। तुलसी ने राम की प्रशंसा उनके शील के कारण की है। शील, बौद्धिक और हार्दिक गुणों का समन्वय है। इसके भीतर कर्त्तव्य और प्रेम दोनों का योग है। यही ग्राम्य और नागरिक गुणों का समन्वय भी है। और इसी समन्वय के कारण ही राम इतने लोकप्रिय हैं, जिसके लिये तुलसी कहते हैं :—

"सुन सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपन ते पित-मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम विध बदन रिसौहैं सपनेहुँ लखेउ न काउ॥

इस प्रकार तुलसी की दृष्टि से लोक-जीवन के आदर्श में दोनों प्रकार की विशेषताओं का समन्वय होना चाहिए।

तुलसी की रचनाओं में लोक-जीवन की झलक कई रूपों में देखने को मिलती है। परन्तु उसकी झाँकी के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ता है। लोक-जीवन की लीला-भूमि प्रकृति और ग्राम्य-स्थली का वर्णन भी हमें यथार्थ रूप में नहीं मिलता। हाँ, हमारी कुछ पुण्य भूमियों की पावन झलक दिखायी देती है। गोस्वामी जी की 'कवितावली' में प्रयाग, काशी सीतावट, चित्रकूट आदि के वर्णन हैं। चित्रकूट के प्रति भारतीय लोक-जीवन का बड़ा आकर्षण

भी है। तभी तुलसी कहते हैं :—

"चित्रकूट अति वि।चत्र, सुन्दर वन, महि पवित्र।
पावन पय सरित तीर मल निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम।
वाम अंग वामावर विस्व वन्दिनी।
वर विधान करत गान, वारत धन, मान प्रान।
झरना झरत झिंग झिंग झिंग जलतरंगिणी।
वर विहार चरन चारु पाँडर चम्पा कचनार।
करनहार वारपार पुर पुरंगिनी।"

लोक-जीवन के प्राण राम के आ जाने पर चित्रकूट के वन को एक विशेष शोभा प्राप्त हो गयी है, देखिए—

"आइ रहे जबते दोऊ भाई।

तब ते चित्रकूट कानन छबि, दिन दिन अधिक अधिकाई।
उकठेउ हिरत भये जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत, पलुहत विटप बेलि अभिमत सुखदाई।
सरित-सरिन सरसीरुह संकुल, सदन सवाँरि रमा जनु छाई।
कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि जात पथिक जनु लेत बुलाई॥"

तुलसी ने इस पवित्र भूमि की वर्षा और वसन्त की विशिष्ट शोभा का भी वर्णन किया है। लोक-जीवन के नायक राम के विशेष निवास स्थानों का ही वर्णन गोस्वामी तुलसीदास का उद्दिष्ट जान पड़ता है। किष्किंधा में ऋष्य-मूक पर्वत पर निवास करते समय वर्षा और शरद ऋतुओं के वर्णन के बहाने तुलसी ने लोक-नीति और व्यवहार में उपयोगी बहुमूल्य सूक्तिओं की रचना की है जो आज भी लोक-जीवन के पथ-प्रदर्शन का काम करती है।

"भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी॥
सिमिट सिमिट जल भरे तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहँ आवा॥
सरित सर जल निर्मल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥"

इस प्रकार लोक-जीवन की लीला-भूमि प्रकृति के सामान्य रूप का चित्रण न कर उन्होंने उससे जीवनोपयोगी तथ्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है।

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि से मानव-जीवन का महत्व बहुत बड़ा है। अतएव उसका पूरा उपयोग करने के लिए पूर्ववर्ती ज्ञान और लोक-परम्परा के आधार पर कर्त्तव्य कर्म निश्चित करना तथा उनको पूरा करने का भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने इसके लिए लोक और वेद दोनों की आज्ञा का पालन करना आवश्यक बताया है। वेद, शास्त्रीय पक्ष है और लोक, उसका व्यावहारिक प्रचलित पक्ष। लोक-जीवन में प्रचलित परम्पराओं का शास्त्रीय आधार प्रायः खोजने पर भी नहीं मिलता है। चलन और प्रथा का महत्व लोक-जीवन में विशेष रूप से है। ये चलन-प्रथाएँ किसी वर्ग-विशेष की विशिष्ट जीवन-धारा की प्रगति को स्पष्ट करती हैं। ये प्रायः उस वर्ग के जीवन को सुलभ, सफल और आनन्ददायी बनाने के सामूहिक प्रयत्न हैं जिसके द्वारा उस वर्ग में अधिक चेतना की अवस्था में विकास और परिवर्तन होते रहते हैं और चेतना की कुंठित अवस्था में उनका अन्धानुकरण मात्र रह जाता है। इन दोनों अवस्थाओं के दोषों को दूर करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने वेद और लोक, अर्थात् शास्त्र और प्रथा का समन्वय कर दिया है, जिससे न शास्त्र ही समय-विरुद्ध हो सके और न प्रथा ही अन्ध-परम्परा मात्र।

तुलसी ने राम के जीवन की कथा में विभिन्न अवस्थाओं के संस्कारों का वर्णन करने से दोनों ही आधारों का बराबर संकेत किया है। उनके सांस्कृतिक वर्णनों में, जिनसे उनकी रचनाएँ भरपूर हैं, तत्सम्बन्धी उक्तियाँ बराबर मिलती हैं। पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, रामलला-नहछू, गीतावली, रामचरित मानस के संस्कार-वर्णन के प्रसंगों में हम इन बातों को देख सकते हैं।

इन वर्णनों की विशेषता यह है कि आज भी हमारे लोक-जीवन के व्यवहार ऐसे ही बने हुए हैं। हमारा ग्राम और नागरिक समाज इन क्रियाओं और प्रथाओं को आज भी अपनाता चलता है। तुलसी ने राम के सोलहों संस्कारों का वर्णन नहीं किया, जिनका वेदों और स्मृतियों में उल्लेख है तथा

जिनकी ओर हमारे समाज का ध्यान विशेष रूप से आर्यसमाज के आन्दोलन के बाद आकृष्ट हुआ है; परन्तु उन्होंने जातकर्म, नामकरण, मुण्डन, कर्णवेध, उपनयन और विवाह संस्कारों का विशेष वर्णन किया है और इनका आज भी हमारे समाज में बड़ा महत्व है। इस प्रकार इन संस्कारों का आँखों-देखा वर्णन करके उन्होंने हमारे लोक-जीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ तुलसी की विभिन्न रचनाओं से देखिये :—

आलेहि बाँस के माँडव मनिगन पूरन हो,
मोतिन्ह झालरी लगि चहुँदिसि झूलन हो।
गंगा जलकर कलस तौ तुरत मँगाइय हो,
जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो।

—रामलला नहछू

वर दुलहिन्हहिं विलोकि सकल मन रहसहिं॥
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं॥
लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुसकर॥
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर॥

—पार्वती-मंगल

चहुँ प्रकार जेवनार भई बहु भांतिन्ह।
भोजन करत अवध पति सहित बरातिन्ह।
देहिं गारि नर नारि नाम लै दुहुँ दिसि।
जेवत बढ़ेउ आनन्द सोहावन सो निसि॥

—जानकी-मंगल

नाम करन रघुवरनि के नृप सुदिन सोधाए।
घर घर मुद मंगल महा गुन गाय सुहाए॥
गृह, आँगन, चौहट, गली बाजार बनाये।
कलसु, चँवर, तोरन, धुजा, सुबितान तनाए॥
चित्र चारु चौकें रची लिखि नाम जनाए।
भरि भरि सरबर वापिका अरगजा सनाए॥

—गीतावली

रामचरित मानस में वर्णित विभिन्न संस्कार तो सर्वविदित हैं ही। इन समस्त संस्कारों का वर्णन लोक-जीवन की सुन्दर झलक प्रदान करता है। इसी प्रकार के वर्णन उत्सवों और त्यौहारों के हैं। राम के तिलकोत्सव तथा झूला के साथ दीपावली, फाग आदि के मनोहरी वर्णन रामचरित मानस और गीतावली को, संस्कृति का चित्रण करने वाले ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इन वर्णनों की विशेषता हमारे सामूहिक और सामाजिक जीवन के सुदृढ़ संगठन में अन्तर्निहित है। इन संस्कारों, उत्सवों और त्यौहारों में समस्त समाज सम्मिलित होता है। अतः यह सामूहिक आनन्द के अवसर हैं। हमारा आज का समाज इस प्रकार के सामूहिक हार्दिक आनन्द के अवसरों को धीरे-धीरे खोता जा रहा है। ये निश्चित आनन्द के क्षण हमारे जीवन में नवीन प्राण, नवीन उत्साह तथा नवीन जीवनी-शक्ति फूंकते हैं और ये समाज के युवावस्था के लक्षण हैं। इसके अभाव में समाज की वृद्धावस्था स्पष्टतया परिलक्षित होने लगती है।

शिष्टाचार और कलात्मक सजधज का जो वर्णन तुलसी ने किया है, उसमें भी उनके यथार्थवादी और आदर्शात्मक दृष्टिकोण का समन्वय है। शिष्टाचार में व्यक्ति के परिवार के विभिन्न व्यक्तियों से व्यवहार और अभिवादन के प्रसंग हैं या व्यक्ति के समाज के विभिन्न व्यक्तियों के साथ के व्यवहार हैं। इसमें सामान्यतया गुरु, मित्र, राजा, पुरोहित, सेवक, शत्रु आदि के साथ वार्तालापों के प्रसंग आते हैं। सुमंत्र, सचिव और राजा की बातचीत में तुलसी ने शिष्टाचार सम्बन्धी अभिवादन सूचक शब्द 'जयजीव' का प्रयोग किया है जैसे—

देखि सचिव जयजीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रणाम ॥

× × ×

मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये ॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये। भूपत सुमंगल बचन सुनाये ॥

आदि उदाहरणों से स्पष्ट है। यह 'जयजीव' एक विशिष्ट शब्द है। जय तो अब भी प्रचलित है, पर जयजीव नहीं।

माताओं का बच्चों के प्रयाण या विलम्ब के बाद आगमन पर, उनके

सिर सूँघने का उल्लेख भी तुलसी ने अपने ग्रन्थों में किया है। यह प्रेमभाव का ही नहीं, वरन् कुशल-कामना का भी सूचक है।

कलात्मक सजधज के अनेक अवसर तुलसी-द्वारा वर्णित रामचरित के भीतर आये हैं और सर्वत्र तुलसी की कला दृष्टि की बारीकी को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने संकेत रूप से वास्तु, चित्र, नृत्य, संगीत, काव्य आदि कलाओं का उल्लेख किया है। परन्तु विशेष रूप से मोहक विवरण, विवाह आदि संस्कारों में की गई कलात्मक सजधज के हैं। तुलसी की कला-सम्बन्धी सूझ का पूर्ण स्पष्टीकरण, रामचरित मानस में वर्णित जनकपुरी की सजावट के प्रसंग में हो जाता है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

विधिहिं बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।
हरितमनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति, मन विरचि कर भूल।।
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरब परहिँ नहिँ चीन्हें।।
कनक कलित अहिवेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई।।
तेहिं के रचि पचि बँध बनाये। बिच बिच मुकता दाम सुहाए।।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा।
किए भृङ्ग बहुरङ्ग बिहङ्गा। गुञ्जहिं कूजहिं पवन प्रसङ्गा।।
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ीं।।
चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिधुर मनिमय सहज सुहाईं।।
सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मर्कत घवरि लसत पाटमय डोरि।।

इसी प्रकार के वर्णन अयोध्यापुरी में राम के लंका विजयोपरान्त लौट आने पर किये गये हैं तथा दीपोत्सव एवं हिंडोले आदि के प्रसंगों में भी तुलसी की कलात्मक सौन्दर्य-दृष्टि लोकजीवन की उत्कृष्ट सौंन्दर्य-दृष्टि के साथ मेल खाती है।

लोक-जीवन के चित्रण में इसी प्रकार युद्ध की यात्रा का भी वर्णन आया है। वानर-सेना के साथ राम का समुद्र के किनारे पहुँचना और समुद्र पार

करना इसी के अन्तर्गत है। भरत-प्रसंग में जो सभा चित्रकूट पर लगती है, वह आधुनिक सभा का उतना यथार्थ रूप नहीं जितना ग्राम-पंचायत का। उसी का यह बृहद् रूप-सा जान पड़ती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वर्णन उन अनेक विश्वासों का है, जो लोक जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत करते हैं और आज भी हमारे बीच प्रचलित हैं। जैसे निषादराज गुह के प्रसंग में छींक का उल्लेख नीचे की पंक्ति में हुआ है :—

एतना कहत छींक भई बायें। कहेउ सुगुनिहन्ह खेत सुहाये।

इसी प्रकार अनेक सगुनों का वर्णन है—जैसे बालकांड में बारात-यात्रा के प्रसंग में आया है—

लोवा फिरि फिरि दरस दिखावा। सुर भी सम्मुख सिसुहिं पियावा।
सन्मुख आयेउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना।।

आदि।

तुलसी की रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण बात लोक-जीवन के आदर्शों का संकेत है। इसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के आदर्शों का वर्णन है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी ने अपने 'मानस' में लोक-जीवन के ऐहिक आदर्शों में राजा, प्रजा, भाई, माता, पिता, पुत्र, गुरु, मित्र, स्त्री, सेवक, शत्रु सभी के स्वरूप को अंकित किया है जिसमें अलग-अलग कर्तव्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है। वास्तव में तुलसी का प्रमुख उद्देश्य लोक-जीवन के इन्हीं आदर्शों को स्पष्ट करना है। वे समाज के लोगों के सामने, राम के व्यक्तिगत तथा परिवार के लोगों के आचरण को उपस्थित करते हैं और इस दृढ़ता और विश्वास के साथ उसके कर्तव्य का स्पष्टीकरण कर देते हैं कि हमारे लोक-जीवन की उलझनों और समस्याओं के सुलझाव में हमें उनका महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है और यदि हम राम की जीवन-गाथा के आदर्शों को ग्रहण करें, तो समस्त समस्याएँ सुलझ जाती हैं।

इससे भी बढ़कर तुलसी का उद्देश्य लोक-जीवन के पारलौकिक आदर्श को व्यक्त करना है जिसका सार है—ईश्वर-भक्ति। तुलसी का विश्वास है कि भक्ति को अपनाये बिना, हमें अपने लोक-जीवन में कभी भी सफलता नहीं मिल

सकती। रामगाथा के सभी आदर्श पात्र, विभिन्न भावों के ईश्वर भक्त हैं। दशरथ-कौशल्या में वात्सल्य भाव; भरत, लक्ष्मण, हनुमान, में भायप और सेवक भाव; सुग्रीव, विभीषण में सखा-भाव; सीता में दाम्पत्य-भाव; यहाँ तक कि रावण में वैर-भाव की भक्ति देखने को मिलती है। यह जानते हुए कि खरदूषण का वध करने वाला साधारण व्यक्ति नहीं, रावण कहता है कि—"तौ मैं जाय बैर हठि करिहौं। बिनु प्रयास भवसागर तरिहौं।" वह जान बूझकर यह भाव अपनाता है, जिससे कि राम को एक क्षण के लिए भी न भुला सके। यही भक्ति का भाव ही रावण के चरित्र में अद्भुत दृढ़ता का समावेश कर सका था, जिससे कि वह कुटुम्ब का नाश होने पर भी विचलित न हुआ और हँसता रहा। इसी ने सबसे प्रेम करने वाले राम को उसके प्रति वैर भाव से प्रेरित किया और राम ने न केवल दर्शन दिये, वरन् उसका उद्धार किया। अतः लोक-जीवन के समस्त भावों को भक्ति से ओतप्रोत करना ही उनका उद्देश्य था। यह उस समय सगुण-भक्ति आन्दोलन का व्यापक दृष्टिकोण था।

तुलसी की दृष्टि से भक्ति मानव-जीवन का सार है। मानव-जीवन बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। यह जन्म सुर-दुर्लभ है। तुलसी ने यह बात स्वयं राम के मुख से कहलायी है कि मानव-जीवन ही साधन, धर्म और मोक्ष का द्वार है। इसको प्राप्त कर जिसने परलोक न सँभाला, उसका जीवन व्यर्थ है। विषयों का भोगमात्र इसका उद्देश्य न होना चाहिए। इस जीवन को सफल बनाने के लिए भक्ति आवश्यक है।

इस प्रकार तुलसी ने हमारे लोक-जीवन की विभिन्न झाँकियों-द्वारा इसका बड़ा ही मनोहारी, यथार्थ और अनुकरणीय चित्र खींचा है। उनके अन्तिम निष्कर्षों से चाहे हम आज सहमत न हों, क्योंकि इस लोक को छोड़, परलोक की बात सोचने का अवकाश आजकल हमें नहीं है—परन्तु, इनके लौकिक आदर्शों के द्वारा आज भी हमारे समाज का यथार्थ लाभ और कल्याण हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

●

दार्शनिक विचार

गोस्वामी तुलसीदास महापुरुष थे। उनकी आत्मा महान थी। उनके विचार उदार और सुलझे हुए थे। उनका हृदय विशाल और दृष्टि व्यापक थी। तुलसी को केवल कवि कहना उनके व्यक्तित्व का अपमान करना है। वे शुद्ध हृदय साधु, ऋषि, तत्वद्रष्टा, समाज-सुधारक और मानव-समाज से ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवधारियों से स्नेह करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की अनेक समस्याओं को युग-युग की समस्याओं के रूप में देखकर उन्हें शाश्वत रूप से सुलझाने का प्रयत्न किया था। निर्गुण-सगुण, शैव-वैष्णव, अवतारवाद, तथा लोक-जीवन की समस्याओं और विवादों को उन्होंने बहुत कुछ दूर कर दिया था। समाज के प्रत्येक वर्ग को सन्तुष्ट करने वाला तुलसी का 'मानस' हिन्दू धर्म और समाज का अमृत-सागर है। जन-साधारण के लिए तुलसी ने 'रामचरित मानस' के अनेक प्रसंगों में विशेष परिस्थितियों में आदर्श आचरण एवं व्यवहार-द्वारा लोक-रीति का पालन और राम-राज्य का मार्ग बताया है। राम-राज्य का वर्णन कितना लुभावना है! प्रजा कैसी सम्पन्न और सुखी है। राजा का कितना स्नेह और प्रभाव है! यदि राम की भाँति राजा, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न की भाँति भाई, सुग्रीव के समान मित्र, कौशिल्या के समान माता, अवधवासियों के समान प्रजा, हनुमान के समान राज्य कर्मचारी, वशिष्ठ के समान पुरोहित और सुमंत्र के समान मन्त्री प्राप्त हो जायँ तो 'रामराज्य' देखने को अब भी मिल सकता है।

सीता का चरित्र स्त्री समाज का कितना कल्याण कर सकता है। अतः इन अनेक चरित्रों के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने हमारे सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवन की समस्याओं को सुलझाया है, जिसका प्रभाव अभी तक हमारे हृदयों पर अमिट है। इसी सुन्दरता के साथ इन्होंने हमारी मानसिक उलझन और धार्मिक समस्याओं को भी सुलझा दिया है।

तुलसी के समय शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में बड़ा विरोध था। इस विरोध को 'रामचरित मानस' बहुत अंशों में दूर करने में समर्थ हुआ है। शंकर जी राम के सर्वश्रेष्ठ और सबसे महान् भक्त के रूप में हैं। राम की भक्ति में आत्म-विभोर रहना, छियासी हजार वर्ष की समाधि लगाना उनका ही कार्य है। सदा श्री राम का गुण-गान ही शंकर की दिनचर्या है। इतना ही नहीं राम की कथा का आदि स्रोत श्री शंकर ही हैं। 'रामचरित मानस' को सर्वप्रथम शंकर ने ही बनाया था :—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा॥

और इन्हीं से वह लोमष ऋषि, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य आदि के पास गया। स्वयं तुलसी को भी 'मानस' लिखने की प्रेरणा शंकर ने ही दी, जैसा उनके इस कथन से स्पष्ट है—

शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी॥

शंकर राम के भक्त हैं, वैष्णव हैं। राम के रूप को शंकर अच्छी तरह जानते हैं। तुलसी ने लिखा है :—

ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदानि।
रामचरित सतकोटि महँ, लिय महेस पहिचानि॥

और इसी प्रकार राम भी, शंकर के उपासक थे। जहाँ कहीं आवश्यकता पड़ी राम ने शंकर की ही पूजा की है, यथा—

पूजि पार्थिव नाये माथा।

यही नहीं, शंकर तो राम से 'सेवक स्वामि सखा' के सम्बन्धों से बंधे हैं। सीता भी गिरिजा की पूजा करने वाली हैं। अतः शैव और वैष्णव में विरोध या द्वेष की भावना व्यर्थ की है। काकभुशुण्डि के प्रसंग में तो इस विषय पर बिल्कुल ही सीधा प्रकाश पड़ता है। अतएव तुलसी ने बड़ी ही युक्तिपूर्वक धर्म की उदार भावना का प्रतिपादन किया है और नम्रता का आदर्श रक्खा जो इतना ऊँचा और विशाल है तुलसी कह उठते हैं :—

सीय राममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग-पानी॥

अब दूसरी समस्या उस समय अद्वैत और विशिष्टद्वैतवाद की, सगुण-

निर्गुण और अवतारवाद और उसके खंडन की थी। तुलसी का यथार्थ महत्व इस समस्या को पूर्ण रूप से सुलझा देने में है और इसी बहाने हमें तुलसी के आध्यात्मिक विचारों का परिचय भी प्राप्त हो जाता है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत यह भावना काम करती है कि यह संसार झूठा है और, जो कुछ सत्य है वह ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त और दूसरी वस्तु नहीं है। अतः मैं ब्रह्म हूँ। इसको स्पष्ट करने वाली 'अहम् ब्रह्मोस्मि' 'ब्रह्मसत्यम् जगन्मिथ्या' आदि धारणायें अद्वैतवाद की हैं।

अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ भी द्वैत भावना-रूप में दृष्टिगत है, वह सब भ्रम है। वह भ्रम भी माया के कारण है। माया अनिर्वचनीय है। सदसद् विलक्षण हैं। उसे हम न सत्य ही कह सकते हैं न झूठ ही। यहाँ पर माया की बात समझ में नहीं आती है। ब्रह्म की ही माया, ब्रह्म पर क्यों प्रभाव डालती है और ब्रह्म ही क्यों ऐसा भ्रम में पड़ता है कि वह अपने ही को न पहचान सके? यदि ऐसा है तो फिर हमें ब्रह्म (शुद्ध ब्रह्म) और जीव तथा माया में कुछ भेद करके चलना अधिक व्यवहार-संगत जान पड़ता है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से रामनुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतवाद दोनों में भेद कर दिया है। वे जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं, पर प्रकार-प्रकारी भाव से। ईश्वर प्रकारी है और जीव तथा प्रकृति ईश्वर के प्रकार हैं जैसे जल के प्रकार हैं कुहरा भाप तथा बर्फ। ईश्वर विशिष्ट है और जीव तथा प्रकृति उसके विशेषण हैं।

तुलसी की विचार-पद्धति में हमें शंकर और रामानुज दोनों के मतों का समन्वय मिलता है, परन्तु व्यवहार की दृष्टि से वे रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद को अधिक मानते हैं। ईश्वर और जीव की एकता के भाव और माया आदि के प्रभाव का वर्णन तो वे शंकर के अद्वैतवाद के समान ही करते हैं। जैसे राम के रूप और माया के वर्णन करते हुए 'मानस' के प्रारम्भ में वे कहते हैं:—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः॥

यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम् ।
बन्देऽहम् तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।।

परन्तु ध्यान से देखने पर यहाँ भी तुलसी पूर्ण अद्वैती नहीं है, क्योंकि वे प्रथम तो कहते हैं जिसकी माया वश, तो ईश्वर और माया दो का अस्तित्व हो ही गया। तीसरा वह रहा जिस पर कि माया का प्रभाव है और जो संसार-सागर से पार जाना चाहता है।

तुलसी के विचार यथार्थ में यही हैं कि ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अजन्मा, निर्विकार, सर्वान्तर्यामी, अनादि, सत, चित, आनन्दमय है। पर जीव ब्रह्म का अंश है :—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख रासी ।।
सो माया बस पर्यो गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं ।।

किन्तु ईश्वर और जीव में भेद है अवश्य। जीव, माया के वश में है। माया का प्रभाव उस पर बहुत अधिक है भी, किन्तु ईश्वर माया से परे है, माया-पति है और इस प्रकार तुलसी के विचार से 'परवस जीव स्ववस भगवन्ता' है प्रकृति के सत, रज और तम तीन गुण जीव को अपने में बाँधे रहते हैं।

तुलसी ने दोनों के इसी भेद को बड़े ही स्पष्ट शब्द में अभिव्यंजित किया। ईश्वर अखण्ड ज्ञान है, पर जीव का ज्ञान अखण्ड नहीं है। माया के वश में वह नष्ट हो जाता है, भक्तों को भी माया क्यों व्यापती है इसके उत्तर में गरुड़ से काकभुशुण्डि जी कहते हैं :—

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरि जाना ।।
ज्ञान अखण्ड एक सीता बर। माया वस्य जीव सचराचर ।।
जो सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहुँ कस ।।
माया वस्य जीव अभिमानी। ईश वस्य माया गुण खानी ।।
पर वस जीव स्ववस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्री कन्ता ।।
मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाय न कोटि उपाया ।।

ईश्वर तथा जीव के भेद को प्रतिपादित करके तथा जीव अनेक मानकर

तुलसी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि दोनों एक होते हुए भी अलग-अलग हैं। इसी कारण भक्ति के आलंबन में महत्व का भाव प्रदर्शित किया गया है। इसी भेद को स्पष्ट करते हुए लोमश और काकभुशुण्डि के प्रसंग में भी तुलसी कहते है कि क्रोधादि भाव द्वैतबुद्धि के कारण ही होते हैं, अतः माया का प्रभाव जिस जीव पर पड़ सकता है वह जीव, ईश्वर के समान नहीं हो सकता :—

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
माया बस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥

(उत्तर काण्ड)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दोनों तत्त्वतः एक मानते हुए भी ब्रह्म और जीव में भेद करके तुलसी चलते हैं, क्योंकि कोटि तथा स्वभाव के विचार से जीव चाहे ब्रह्म की कोटि का हो, पर शक्ति और प्रभाव के विचार से दोनों में भिन्नता अवश्य है।

अब ईश्वर और जीव के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर यह समझना भी आवश्यक है कि वह ईश्वर सगुण है अथवा निर्गुण। तुलसी फिर समन्वय बुद्धि को ही लेकर चलते हैं। कबीर जिस ब्रह्म को सगुण और निर्गुण के परे मानते हुए कहते हैं :—

सरगुण की सेवा करो, निरगुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सरगुण से परे, तहाँ हमारा ध्यान॥

उसी को तुलसी दोनों के रूप में देखते हैं उनका कथन है कि :—

हिय निरगुण नयनन्हि सगुण, रसना राम सुनाम।
मनौं पुरट सम्पुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥

(दोहावली)

अतः स्पष्ट है तुलसी ज्ञान के लिये निर्गुण, और उपासना के लिए अथवा भक्ति के हेतु ब्रह्म का सगुण रूप ही ग्रहण करते हैं। जो सर्व शक्तिमान निर्गुण ब्रह्म है वही अधर्म को बचाने के लिए और भक्तों के प्रेमवश उन्हें दर्शन देने के लिये सगुण रूप धारण करता है। अतः ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। वह तीनों गुणों के परे होते हुए भी गुणों वाला है। इस विषय में

उठने वाली शंका का निवारण भी तुलसी ने किया है। उनके विचार से निर्गुण और सगुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं, विरोध नहीं। बालकांड में शंकर कहते हैं :—

अगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं बुध पुराण मुनि वेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम सगुन बस सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिगल नहि जैसे ॥

इस प्रकार निर्गुण और सगुण एक ही ब्रह्म है। जैसे कि जल वायु के भीतर भी वाष्प में अदृश्य रूप में रहता है वैसे ही निर्गुण ब्रह्म भी। जिस प्रकार वह अदृश्य वाष्प बादलों का रूप धारण करती है, फिर जल का और वही ठोस उपल का रूप ग्रहण करती है इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म भी सगुण रूप धारण करता है। निर्गुण और सगुण दो प्रकार के ब्रह्म का निरूपण एक और प्रकार से तुलसीदास ने किया है, वे कहते हैं :—

एक दारुगत देखियत एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत को निर्गुण या निराकार ब्रह्म का सगुण या साकार रूप माना जा सकता है। तुलसी ने जो कहीं-कहीं विराटरूप का वर्णन किया है, वह इसी साकार ब्रह्म की व्यापक कल्पना है। लंकाकांड में मन्दोदरी के मुख से तुलसी ने इसी प्रकार के विराटरूप का वर्णन कराया है—

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग विश्रामा ॥
भृकुटि विलास भंयकर काला। नयन दिवाकर कच घनमाला ॥
जासु घ्रान अस्विनिकुमारा। निसि तरु दिवस निमेष अपारा ॥

× × ×

आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कल्पना ॥

यह जगमय प्रभु सगुण ब्रह्म है। इसी का विराट-दर्शन कौसल्या को भी हुआ था। इस दर्शन के लिए श्रद्धा भाव और ज्ञान-दृष्टि अपेक्षित है। तुलसी

जो समस्त जगत को सीयराममय समझकर प्रणाम करते हैं, वह भी उनके इसी प्रकार के विराट-दर्शन का ही परिणाम है।

निर्गुण और सगुण को एक दूसरे का विरोधी मानना दृष्टि-भ्रम है। वस्तुतः दोनों एक ही हैं। निराकार ब्रह्म जब धारणा करता है, तब वह सगुण होकर अवतार लेता है, यह उसकी सामर्थ्य के बाहर नहीं। जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राबल्य होता है, तभी सत्य, धर्म और साधुओं की रक्षा के लिए निर्गुण ब्रह्म साकार रूप में अवतरित होता है। बुद्धि प्रधान दृष्टि से ब्रह्म के निर्गुण रूप को सरलता से समझा जा सकता है, पर सगुण का रहस्य समझना और उस पर विश्वास करना बड़ा कठिन है। गोस्वामीजी ने लिखा है—

निरगुण रूप सुलभ अति, सगुण जान कोइ कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

अतएव उनकी दृष्टि से यथार्थतया ब्रह्म का ज्ञान पूर्ण तभी है जब, निर्गुण के साथ ही उसके सगुण रूप को भी समझ लिया जाय। अन्यथा, समस्त विश्व के साथ प्रेम और न्याय का भाव नहीं जग सकता, क्योंकि समस्त विश्व उसका सगुण रूप है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म विशेष रूप में भी अवतार लेता है। रामानुज-द्वारा प्रतिपादित अवतार के पाँच रूपों पर तुलसी की आस्था जान पड़ती है।

सृष्टि के अन्त में अर्थात् महाप्रलय के समय ब्रह्म सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में ही लीन कर सब को समेट कर निर्गुण, निराकार हो जाता है। वही आरम्भ में अपने अंश से सूर्य की किरणों के समान अनेक ग्रहों रूप जीवों और लोकों का विकास करता है। माया के सम्पर्क से अज्ञान का आवरण पड़ते-पड़ते जीवों की विवेकमयी बुद्धि मन्द होती रहती है और भेद-बुद्धि बराबर बढ़ती रहती है और इस प्रकार ईश्वर से दूरी भी बढ़ती जाती है—

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूर लखि, सिर पर पगतर छाँह॥

जीव के लिए राम की कृपा की अत्यन्त आवश्यकता है। बिना कृपा के सुबुद्धि प्रेरणा नहीं होती।

तुलसी के विचार से जो राम निर्गुण और सर्वशक्तिमान् हैं वही सगुण भी है और वही अवतार भी लेते हैं। मानस के 'बालकांड' में उन्होंने लिखा है—

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप॥

×　　　×　　　×

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अस प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥

अतएव तुलसी के मत से जो राम निर्गुण होते हुए भी अवतार लेते हैं, और सगुण विग्रह धारण करते हैं। यह धारणा 'अध्यात्म रामायण', 'भागवत' आदि ग्रन्थों के आधार पर है। इन ग्रन्थों के विचार से ही राम, विष्णु के रूप हैं, परन्तु तुलसी के लिए यह विचार मान्य नहीं है। उनके 'राम' तो सभी देवताओं, त्रिदेवों और विष्णु से भी परे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो उनसे शक्ति प्राप्त करते हैं। अतः वह विष्णु आदि सबसे बढ़कर सच्चिदानन्द हैं। विनय-पत्रिका में गोस्वामी जी ने कहा है—

हरिहिं हरिता, विधिहिं विधिता, शिर्वाहं शिवता जो दई।
सोई जानकी पति मधुर मूरति मदोमय मंगलमई॥

अतः राम ही सर्वोच्च हैं। जानकी या सीता उन्हीं राम की महाशक्ति हैं। राम स्वयं सत्य हैं और इनकी सत्यता की व्याप्ति से हरि-माया भी सत्य लगती है—

'जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।'

माया

इस माया का वर्णन तुलसीदास ने दो रूपों में किया है। प्रथम विद्या माया है और द्वितीय अविद्या माया। दोनों प्रकार की माया द्वैत-बुद्धि की ओर ले जाने वाली होती है। विद्या माया से सृष्टि का विस्तार और विकास होता

है और अविद्या-माया से दु:ख, उन्माद आदि मोह बढ़ते हैं। विद्या माया सृष्टि की रचना करती है, पर वह भी ईश्वर से प्रेरित होने पर तथा उसी की शक्ति से। जो भक्त होते हैं, उन पर अविद्या माया प्रभाव नहीं डालती। उन पर विद्या माया का ही प्रभाव उनके अहंभाव या विकारों के नाश करने के लिए होता है, क्योंकि माया के प्रभाव से ईश्वर को छोड़कर और कोई नहीं बच सकता है। अत: भक्तों को भी विद्या माया, अहंभाव या भ्रम के रूप में व्याप्त होती है। सती, नारद, भुशुंडि, गरुड़, लोमश आदि पर विद्या माया का ही प्रभाव था। अविद्या माया का प्रभाव रावण आदि पर था जो उन्हें ज्ञान-हीन ही नहीं बनाये था, वरन् दुराचार की ओर भी प्रेरित किये था। तुलसी की दृष्टि से माया का प्रभाव शिव, ब्रह्मा पर भी है—

शिव विरंचि कहँ मोहहि, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान॥

(उत्तर कांड)

जीव इसी माया के वश में पड़ा हुआ ईश्वर को भूला रहता है। वह ईश्वर की कृपा से ही माया के प्रभाव से मुक्ति पाता है। 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास ने कहा है—

माधव अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया।

(विनय-पत्रिका)

इस प्रकार लीला के प्रसार या विकास में इस प्रकार के भेद हो जाते हैं।

निर्गुण राम की लीलात्मक प्रकृति की क्रिया 'मूल प्रकृति' को जन्म देती है। मूल प्रकृति से महत्व, उससे अहंकार और शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि गुणों के साथ आकाश, वायु, अग्नि, नीर, पृथ्वी आदि उत्पन्न होते हैं। बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण, चित्त आदि के रूप में राम की चित् शक्ति व्यक्त होती है। इस प्रकार का विश्वास तुलसी की विनय-पत्रिका में निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त हुआ है—

प्रकृति महतत्व शब्दादि गुन देवता व्योम मरुदग्नि अमलाँबु उर्वी।

बुद्धि मन इन्द्रिय प्राण चित्तातमा काल परमाण चिच्छक्ति गुर्वी ।
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपाल मनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो ।
भुवन भवदंस कामारि वंदित पदद्वन्द मन्दाकिनी जनक जिष्णो ।।५४।।

इससे स्पष्ट है कि तत्वत: कोई अन्तर नहीं है । सभी पदार्थ 'त्वद्रूप' हैं, यह ज्ञान की बात है, यह वह तथ्य है, जो सभी को विदित नहीं होता है । अत: व्यवहार के लिए ब्रह्म के सान्निध्य की कामना आवश्यक है ।

ज्ञान-भक्ति

जब ईश्वर की कृपा ही सब कुछ करने वाली है, तब तो मानव के लिए कुछ करने को है नहीं । ईश्वर जब जो चाहेगा तभी वह कार्य करेगा । ईश्वर की इस प्रकार की स्वेच्छाचारी धारणा, जो इस्लाम में है, वह भारतीय दर्शनों में नहीं । उसकी कृपा प्राप्त की जा सकती है । माया के बन्धन से जीव मुक्त हो सकता है । इसके हेतु विद्वानों ने अनेक उपाय बताये हैं, उन्हीं उपायों के अन्तर्गत जप, तप, योग, वैराग्य, ज्ञान, कर्म, उपासना आदि हैं । इनमें से मुख्य ज्ञान और भक्ति हैं । बिना ज्ञान या भक्ति के कर्म भी नहीं निश्चित किया जा सकता है । अतः ज्ञान और भक्ति, मुक्ति के साधन हैं जिनके द्वारा सांसारिक बन्धन या माया दूर हो सकती है ।

ज्ञान-मार्ग

तुलसी कहते हैं कि ज्ञान बहुत उत्तम है । 'सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखंडा' अर्थात् मैं वही ईश्वर हूँ इस प्रकार का ज्ञान होना बड़ा उत्तम है । परन्तु ऐसा ज्ञान प्राप्त करना—जो मुक्ति के द्वार खोल दे—सरल कार्य नहीं है । मनुष्य के भीतर चेतन के अन्तर्गत जड़ता की गाँठ, अनेक जन्मों के माया के संपर्क के कारण पड़ गई है, वह बहुत कठिनता से निकलती है । वह दीखती ही नहीं, छूटना तो दूर की बात है । इसी गाँठ को खोलने के लिए तुलसी ने ज्ञान दीपक का साधन बताया है, जो बड़ा ही कठिन साधन है । यदि ज्ञान-दीप को

प्राप्त भी कर लिया जाय, तब भी उसकी ज्योति को जगाये रखने के लिए बड़ी ही सतर्कता की आवश्यकता है। अन्यथा अनेक बाधाएँ आकर उसे बुझा देती हैं। अतः यह मार्ग बड़ा ही दुःखसाध्य है। तुलसी कहते हैं—

कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन विवेक।
होय घुनाच्छर न्याय जौ, पुनि प्रत्यूह अनेक।।

ज्ञान प्राप्त कर लेने पर उसे कायम रखना बड़ा ही कठिन है। अतः इस प्रकार कठिन ज्ञान का मार्ग सर्व-जन-सुलभ नहीं है।

भक्ति-पथ

वास्तव में सर्वजनकल्याणकारी भक्ति-पथ है। वह एक राजमार्ग है जिस पर चलने पर सभी को सफलता प्राप्त हो सकती है। इस भक्ति के यद्यपि शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य और माधुर्य-ये पाँच भाव कहे गये हैं, पर तुलसी-दास यथार्थ में दास्य भाव को ही उपयुक्त मानते हैं अन्यथा ईश्वर और जीव के बीच का यथार्थ सम्बन्ध विकसित नहीं हो पाता और विरह-विकलता का कष्ट अधिक होता है। अतः दास्य भाव ही अधिक समीचीन है। काकभुशुण्डि ने गरुड़ से कहा है—

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।'

अतः दास्य भक्ति ही सर्वोत्तम है। दास्य भक्ति के अन्तर्गत पूर्ण आत्म-समर्पण, अनन्यता, दैन्य, अनवरत लगन आवश्यक हैं।

भक्ति के अनेक भावों का विवरण हमें तुलसी की विनय-पत्रिका में देखने को मिलता है। भक्ति सर्वजन-सुलभ होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। परन्तु मन का पूर्णरूपेण भक्ति में लगाना ईश्वर की कृपा पर ही निर्भर करता है। तुलसी के इस विचार की वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में समानता है। तुलसी कहते हैं—

मेरो मन हरिजू हठ न तजै।
हौं हार्‌यो करि जतन विविध विधि नेकु न मूढ़ लजै।
× × ×
तुलसी तब होइ स्वबस जब प्रेरक प्रभु बरजै।

इतना होते हुए भी तुलसी यह मानते हैं कि ईश्वर की कृपा भी मनुष्य प्राप्त कर सकता है यदि वह भक्ति की साधना प्रारम्भ कर दे। उसके लिए पवित्र जीवन, श्रुति का विधान, वैराग्य, विवेक आदि आवश्यक हैं। तुलसी की भक्ति, विधि-रहित नहीं है। वह वेद-सम्मत है, उन्होंने कहा है—

'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संयुत विरति विवेक।'

अतः विधि-पूर्वक भक्ति-पथ को ग्रहण करने पर ईश्वर की कृपा प्राप्त की जा सकती है, पर भक्ति निःस्वार्थ होनी चाहिए। भक्ति के साधक वैकुण्ठ की भी कामना नहीं करते, उन्हें मुक्ति भी नहीं चाहिए। पूर्ण भक्त कभी भी मुक्ति नहीं चाहता, वह भक्ति ही चाहता है। काकभुशुण्डि ऐसे ही भक्तों में से थे और शंकर जी भी। भक्त को मुक्ति तो स्वतः प्राप्त हो जाती है—

रामभजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं।

ऐसी भक्ति किसके द्वारा वांछनीय न होगी?

इस प्रकार तुलसीदास जी ने अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों को अपना कर भी किसी एक वाद को पूर्णतया ग्रहण नहीं किया, वरन् उनके बीच सामंजस्य स्थापित किया है। कुछ विद्वान इन्हें अद्वैतवादी और कुछ विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं। पर, तुलसी दोनों को अंशतः मानते हुए भी, किसी एक से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। जहाँ तक तथ्य-ज्ञान की बात है तुलसी अद्वैतवाद पर आस्था रखते हैं। चरम ज्ञान का निष्कर्ष वही है। पर वह एक आदर्श रूप है। तुलसी इसे मानते हैं कि जीव इस चरम ज्ञान की स्थिति में सर्वकाल में नहीं रहता। अतः लोक जीवन के व्यावहारिक दृष्टिकोण से तुलसी को ईश्वर और जीव में भेद भाव मान्य है। दृश्य जगत में जड़ और चेतन दो तत्व हैं, जड़ जगत् और चेतन जीव है। इन जीवों की विभिन्न योनियाँ हैं। मनुष्य को छोड़कर अन्य योनियों में जीव केवल किये का भोग करता है। कर्म नहीं कर सकता। कर्म क्षेत्र मनुष्ययोनि में ही जीव को प्राप्त होता है।[1] ऐसी दशा में गोस्वामी जी मनुष्य के लिए भक्ति आवश्यक समझते हैं। भक्ति प्राप्त करने में मनुष्य के प्रयत्न के साथ-साथ ईश्वर की कृपा भी आवश्यक है।[2] यह ईश्वरानुग्रह का

---

१ उत्तरकांड, दोहा—४३। २ विनय-पत्रिका, पद—८९

भाव, वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद के पुष्टि मार्ग से साम्य रखता है। इस प्रकार तुलसीदास ने अपने दार्शनिक विचारों के निर्माण में विभिन्न संप्रदायों और सिद्धान्तों से सार ग्रहण किया है, पर किसी वाद के झमेले में वे पड़ना नहीं चाहते। अनेक वादों के अनुसार जगत को किसी निश्चित रूप में वर्णन करना भी तुलसी भ्रम मानते हैं, क्योंकि यह दृष्टि का एकांगीपन है—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल कोउ माने।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आतम पहिचानै ॥[1]

तुलसी ने विभिन्न सिद्धान्तों की परस्पर विरोधी बातों को छोड़ दिया है और सबमें मान्य एवं समन्वयपूर्ण अपना मत विकसित किया है जिसका सार भक्ति है।

तुलसीदास ने ईश्वर के निवास-रूप बैकुण्ड की कल्पना नहीं की और न उसका वर्णन ही किया है जैसा कि भक्ति के दार्शनिक वादों में किया गया है, फिर भी वे पूर्ववर्ती वर्णनों में अनास्था नहीं रखते। वे मानते हैं कि ब्रह्मपुरी इन्द्रपुरी आदि हैं। शंकर का कैलाश और विष्णु का निवासस्थान क्षीरसागर है। परन्तु, तुलसी ने राम को विशेष लोक में प्रतिष्ठित न मानकर, सर्वान्तर्यामी ही माना है। जिस समय सभी देवता, ब्रह्मा, पृथ्वी आदि मिलकर अत्याचारी रावण के अनाचार से पीड़ित होकर प्रार्थना करने चले तो शंकरजी ने सर्वव्यापी भगवान की प्रार्थना करने का ही आदेश देकर कहा कि भगवान प्रेम से ही प्रकट होते हैं—

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बश प्रभु सोई ॥
तेहि अवसर गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन अस कहेउँ ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसहूँ माहीं। कहहुँ सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जग मय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥

---

१. विनय-पत्रिका, पद १११

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास ने ईश्वर को अन्तर्यामी रूप में ही वर्णित किया है। वह किसी लोक विशेष का वासी नहीं है।

इन अनेक बातों के आधार पर हम कह सकते हैं कि तुलसी के दार्शनिक विचार न साम्प्रदायिक हैं न संकीर्ण। वे व्यापक और उदार हैं। जो बातें अनेक सम्प्रदायों में सभी को मान्य हैं तुलसी ने उन्हीं को ग्रहण किया है। उनकी धर्म-सम्बन्धी धारणा सर्वजन-सुलभ और लोक कल्याणकारी है। कुछ बातों को छोड़ कर शेष बातें संसार के अधिकांश धर्मों और सम्प्रदायों को मान्य हो सकती है।

●

उपसंहार

गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व के इस समीक्षण से अनेक बातें स्पष्ट होती हैं, जिनको ध्यान में रखकर न चलने से हम उनके किसी एक पक्ष की गहराई में ही गोते लगाते रहते हैं और उस विशाल रत्नाकर के दूसरे छोर पर क्या है, यह नहीं जान सकते हैं। साथ ही 'रामचरित मानस' उनकी महती कृति है, फिर भी उसकी अन्य कृतियाँ भी अपनी अलग विशेषताओं से सम्पन्न हैं, वह भी हमारे लिए समझना आवश्यक है। तुलसीदास के दृष्टिकोण में भक्ति-भाव प्रधान रूप से होते हुए भी, उनकी भावना सामाजिक है। अतएव देश और समाज की रीति-नीति और संस्कृति का जो रूप उन्होंने हमारे सामने रखा है, उससे उनके सामाजिक और राजनीतिक आदर्श स्पष्ट होते हैं। वे समाज को जिस रूप में देखना चाहते थे, वह रामराज्य का रूप है जिसमें राजा के कर्तव्य के साथ जन-समूह और प्रजा की कर्तव्य-परायणता भी आवश्यक है। गोस्वामी जी ने जिस राम राज्य चित्रण किया है उसको व्यावहारिक भी बना दिया है। इस प्रकार के रामराज्य की स्थापना के लिए यह आवश्यक नहीं कि राम ही राजा हों, तभी वह स्थापित हो सके। जिस प्रकार चौदह वर्ष तक भरत राम के आदर्श को सामने रखकर त्याग और सेवा-भाव से शासन सँभाले रहे उसी प्रकार शासन-सूत्र जिसके हाथ में हो, वह यदि अपने को भरत समझकर शासन को राम की थाती के रूप में स्वीकार कर प्रबन्ध करे निश्चय ही वह कल्पना का राज्य वास्तविक हो सकता है। इसी प्रकार प्रजा भी राम के परिवार और जनता का अनुगमन करे, तो स्नेह की ऐसी पारिवारिक व्यवस्था कायम हो सकती है जिसमें शासक राजा न होकर परिवार का ही पिता, भाई आदि रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है। अतः रामचरित मानस भी निश्चयतः इस प्रकार का सन्देश ही नहीं देता, वरन् उस प्रकार का वातावरण भी बनाने का प्रयत्न करता है।

तुलसी की कृतियों की दूसरी सामाजिक देन है, दासता से मुक्ति। संसार को क्षणभंगुर मानकर, उसके प्रति निर्लेप और निर्वेद का भाव जगाकर इन संत और भक्त कवियों ने हमारी आर्थिक दासता से हमें मुक्ति प्रदान की हैं। पूर्ण-तया उनका दृष्टिकोण आज चाहे हमें मान्य न हो और हम आर्थिक समृद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहें, पर इसमें मतभेद नहीं हो सकता कि सामाजिक स्नेह के प्रगाढ़ बन्धन के लिए मनुष्य को व्यक्ति का तिरोभाव करना होगा और उसके लिए यह निर्वेद आवश्यक हैं। तुलसी तीन प्रकार की ईषणाएँ, मनुष्य के सामाजिक स्नेह भाव के मार्ग में बाधक मानते हैं, वे हैं—सुत, वित और लोक सम्बन्धी ईषणाएँ।[1] इन ईषणाओं से अर्थात् आर्थिक प्रलोभन से पारिवारिक पक्षपात भाव से और स्वयश के विस्तार के प्रलोभन से मुक्त होकर ही व्यक्ति सामाजिक हित कर सकता है और समत्व का भाव विकसित कर सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा गान्धी में यहीं प्रभाव व्याप्त था। इस दृष्टि के विकसित होने पर परस्पर जो स्पर्द्धापूर्ण आर्थिक घुड़दौड़, समाज में चलती रहती है, वह समाप्त हो सकती हैं और धनहीन मानव में भी हीनता का भाव नहीं जग सकता। अतः तुलसी का दृष्टिकोण हमारी आर्थिक दासता से हमें मुक्ति प्रदान करता है जिसके कि हम आज स्वतन्त्र होकर भी गुलाम हैं।

इसी प्रकार की मुक्ति उन्होंने मानसिक दासता से भी प्रदान की है। तुलसी के पूर्व और उनके समय में भी ज्ञान और कर्मकांड की रूढ़ियाँ प्रबल थीं। इन रूढ़ियों का भगवान बुद्ध ने खंडन एक बार किया था, पर वे फिर नये रूप में बन गई थीं। कर्मकांडी अपने को ऊँचा और दूसरे को नीच समझता था। ज्ञानी भी अहं के दर्शन के प्रयत्न में अहंकारी बन बैठा था। और ज्ञानहीन मनुष्यों को पशु से बढ़कर मानता था। स्वयं तुलसी का अपना अनुभव था :—

कर्मठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान विहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो, राम दुवारे दीन॥
(दोहावली)

---

१. सुत विच लोक ईषणा तीनी।
—उत्तरकांड।

अतः उन्होंने इस प्रकार की रूढ़ियों की भित्तियों को ढहाकर भक्ति का मार्ग धनी, निर्धन, ज्ञानी, अज्ञानी सब के लिए सुलभ कर दिया। विधर्मियों के लिए भी इनके द्वार खुले थे। व्याध, गणिका, जवन, वानर, भालु, निसिचर किसी का भेदभाव न था। अहंभाव से युक्त होकर ज्ञानी नष्ट हो जाता है, वह संतों का अनुभव था। तुलसी ने लोमश के उदाहरण-द्वारा यही व्यक्त किया है और कबीर ने कहा है—

> ज्ञानी मूल गँवाइया आपुन भे करता।
> ताथें ससारी भला, जो रहा डरता ॥[1]

रूढ़ियों के खंडन में तुलसी ने कबीर की भाँति उग्रता ग्रहण नहीं की, फिर भी उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों का खंडन कर एक उदार दृष्टिकोण का विकास किया और मानसिक दासता को हटाकर व्यर्थ के भेदभाव को दूर किया। यहाँ पर हमें उनके वर्णाश्रम-व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्न को नहीं उठाना चाहिए; क्योंकि उसका वास्तविक उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था कायम करना है, भेदभाव बढ़ाना नहीं और वह धर्म और गुणों की हीनता के अभाव में कायम नहीं रह सकती। इस प्रकार आर्थिक और मानसिक दासता से मुक्ति प्रदान कर तुलसी ने वास्तविक स्वावलम्बन एवं स्वतन्त्रता की भावना का विकास किया।

इसी प्रसंग में तीसरी महत्वपूर्ण देन उनकी, जीवन की पूर्ण-कल्पना है। जो न कबीर कर सके, न सूर और न कालिदास और न भवभूति ही। जिसे आदि महाकवि वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया था; पर उसका परिष्कार करके समाज के अनुरूप बनाकर तुलसीदास ने हमारे सामने, राम के चरित के रूप में प्रस्तुत किया। बाल्यकाल से लेकर राज्याभिषेक तक, जितनी विविध परिस्थितियों में राम का जीवन विकसित हुआ, वे केवल जीवन की विविध रूपता ही प्रस्तुत नहीं करतीं, वरन् हृदय को मन्थन कर देने वाली गम्भीरता और विषमता भी उपस्थित करती हैं। हम रामचरित मानस को केवल साहित्यिक रचना के ही रूप में नहीं देख सकते। वरन् अनेक स्थलों पर ऐसा लगता है कि हम घटनाओं

---

१. कबीर ग्रन्थावली, साखी ४०४

से दूर नहीं उन्हीं के बीच खड़े हैं और परिस्थिति मुँह फैलाये हमारे सामने हमारी कर्त्तव्यदृष्टि और विवेक को निगल जाने के लिए खड़ी है। ऐसे धर्म संकट ही जीवन को गंभीरता प्रदान करते हैं। विश्वामित्र के आगमन पर दशरथ धनुष न टूटने पर, उनका बनवास का वरदान माँगने पर दशरथ, राम, कौशल्या, सीता, आदि समस्त परिवार, चित्रकूट में भरत और राम, वन में सीताहरण पर राम और लक्ष्मण, समुद्र तट पर राम, शक्ति लगने पर राम, अशोक वाटिका में सीता आदि गंभीर धर्म संकटों में पड़ते हैं, पर अपने शील और विवेक से उसके पार हो जाते हैं। ऐसे ही माता-पिता, भाई, सास, बहू, स्वामी-सेवक मित्र-शत्रु, राजा-प्रजा आदि विविध सम्बन्धों का चित्रण और निर्वाह, बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक के सुख-दुःखपूर्ण उत्सव और संस्कार, राज्याभिषेक, धनुषयज्ञ, चित्रकूट और रणक्षेत्र के समारोह, सरल से सरल और कुटिल से कुटिल व्यक्ति के साथ कर्तव्य आदि जीवन के बहुमुखी पक्ष हैं जिनके मार्मिक चित्रण करके गोस्वामी तुलसीदास ने हमारे मानसों को परिपूर्ण कर दिया है। इस जीवन की पूर्णता सजीवता के रूप का पता हमें तब लगता है जब कि राम की जीवन गाथा कोई अन्य कवि प्रस्तुत करता है और उसे पढ़कर हमें ऐसा लगता है कि तुलसी के चित्रण का यह पासंग भर भी नहीं हैं। यह है उस महान् कवि की सामाजिक देन, जो हमारे संस्करण और कल्पना में उतर गई है।

ऐसे कवि महात्मा, भक्त दार्शनिक, सुहृद, दूरदर्शी तथा करुणापूर्ण मानव और उसके कृतित्व के सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय थोड़ा है। बहुत कहा गया है और अभी बहुत कहने को है। अतः मैं भी उन्हीं मनस्वी महात्मा के दूसरे प्रसंग में कहे गये शब्दों के उल्लेख के साथ इसे समाप्त करता हूँ—

'थोरे मँह जानिहहिं सयानें।'

●

संग्रह खण्ड

संग्रह-खंड

कवितावली :

बालकांड

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिकसे ।।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातकसे ।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ।।१।।
कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाई कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ।।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन-मन्दिर में बिहरैं ।।२।।
बरदंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की ।
चपला चमकै घन बीच जगै, छबि मोतिन माल अमोलन की ।।
घुँघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की ।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की ।।३।।

दूध दधि रोचना कनकथार भरि भरि,
आरती सँवारि वर नारी चलीं गावतीं ।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकी के,
पहिराओ राघो जू को सखियाँ सिखावतीं ।
तुलसी मुदितमन जनक नगरजन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं ।
मनहुँ चकोरो चारु बैठी निज निज नीड़,
चंद की किरन पीवें, पलकैं न लावतीं ।।४।।

अयोध्याकांड

कीर के कागर-ज्यौं नृपचीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यौं, पंथ के साथी ज्यौं लोग-लुगाई।।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।५।।
रावरे दोष न पायन को, पगधूरि की भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है।।
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ?।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।।६।।
पुरतें निकसी रघुबीर-बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै।।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ?।
तिय कीलखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै।।७।।
जलको गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पछै ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।।
पोंछि पसेउ बयारि करौं; अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।
तुलसी रघुबीर पिया स्रम जानिकै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े।।८।।

सुंदर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट, लूटक पटनि के।।
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचे बरूथ विद्युतछटनि के।
गोरे को बरन देगे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि के।।९।।

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी ! मोहिं सी ह्वै ।
मन जोग न, कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ।।
तुलसी सुनि ग्राम बधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ।।१०।।
साँवरे, गोरे सलोने, सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।
बाने कमान निषंग कसे सिर सौहैं जटा, मुनिवेष कियो है ।
संग लिये बिधु बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है ।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलि हैं ? सकुचात हियो है ।।११।।
रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हे ते कठोर हियो है ।।
राजहु काज अकाज न जान्यौ, कह्यौ तिय को जिन कान कियौ है ।।
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में सखि ! राखिबे जोग, तिन्हैं किमि कै बनवास दियो है ।।१२।।
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ।।
तुलसी तेहि औसर सौहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ।।१३।।

सुंदरकांड

बालधी बिसालबिकरालज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैंधौं व्योम बीथिका भरे हैं भरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है ।
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु ते कृसानु-सरि भारी है ।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजार्यो अब नगर प्रजारी है" ।।१४।।

बड़ो बिकराल वेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो।
वेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बढ़ाई जीतो बावनो।
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो।
काहै की कुसल रोषे राम बामदेवहू के;
बिषम बली सौ बादि बैर को बढ़ावनो ॥१५॥

बीथिका बजार प्रति अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध उर्द्ध बानर बिदिस दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे, आँखि लागे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए ?
' लेहु अब लेहु, तव कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ॥१६॥

एक करै धौंज, एक कहै कढ़ो सौंज,
एक औंजि पानी पी के कहै बनत न आवनो।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो।'
तुलसी कहत एक नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़ बाल गाल को बजावनो।
"धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौं रावरे या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो" ॥१७॥

हाट बाट हाटक पिघिल चलो घी सो घनो,
कनक-कारही लंक तलफति ताय सों।

नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरि कीन्हीं भली भाँति भाय सों।
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेवाये चित्त चाय सों।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
"बाबरे सुरारि बैर चीन्हों रामराय सों" ॥१८॥

लंका कांड

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि,
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों,
सकल संग्राम दसकंध काँध्यो।
समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु,
विकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥१९॥

'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि' भयो,
सोर चहुँ ओर लङ्का आये जुबराज के।
एक काढ़ै सौज, एक धौज करैं कहा ह्वै है,
'पोच भई महा' सोच सुभट सकाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।
सहमि सुखात बातजात की सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के ॥२०॥

रजनीचर मत्तगयन्द-घटा बिघटै मृगराज के साज सरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥

तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै ?
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै ।।२१।।

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए ।
ते रन रौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए ।।
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाए ।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए ।।२२।।

उत्तर कांड

विषया परनारि निसा-तरुनाई सु पाइ पर्‌यो अनुरागहि रे ।
जम के पहरू दुख रोग वियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे ।।
ममताबस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे ।
जरठाइ दिसा रविकाल उग्यो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।।२३।।

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै ।।
करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत बाम सदा सहि कै ।।
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै ।
नतु और सबै बिष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै ।।२४।।

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनी, सो सुत, सोहति मेरो ।
सोई सगो, सों सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो ।।
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।
जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सबेरो ।।२५।।

सियराम-सरूप अगाध अनूप विलोचन-मीनन को जलु है ।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहिं को थलु है ।।
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों, रामहिं को बलु है ।
सबकी न कहैं, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है ।।२६।।

'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है ।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दन्त, करंत हहा है ।।

जानपनी को गुमान बड़ो, तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है ।।२७।।

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जो भरि है।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरि है ?
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरि है।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकी नाथ मया करि है ।।२८।।

आपु हौं आपु की नीके के जानत, रावरो राम! भरायो गोढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकी नाथ पढ़ायो।
सोई है खेद जो वेद कहै, न घटे जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हों तौं सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो ।।२९।।

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरेहू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो; न मानत, न मानिहौं ।।
पाँच की प्रतीति न; भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम लपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुद की सी भाँई बातैं,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ।।३०।।
राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को ।।
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु; पायो,
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ।।३१।।

जायो कुल मङ्गन; बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को ।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौ चारि फल चारि ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सौच बिधिहू गनक को ।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो;
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को ॥३२॥

किसबी, किसान-कुल, बनिक; भिखारी, भाँट;
चाकर, चपल; नट चोर चार चेटकी ।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त चढ़त गिरि,
अटत गहन-वन अहन अखेट की ॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी ।
तुलसी बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें;
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥३३॥

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि;
बनिक को बनिज न चाकर को न चाकरी ।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई का करी ?"
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
लाँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी ।
दारिद-दसानन दबाई दूनी, दीनबन्धु ।
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥३४॥

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत;
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है ।

गारी देत नीच हरिचन्द हूँ दधीचि हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत हैं।
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को;
आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत हैं।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत हैं ।।३५।।

कनक कुधर-केदार, बीज सुन्दर सुरमनिवर।
सींचि कामधुक धेन सुधामय पय विसुद्धतर ।।
तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मञ्जरिय लच्छ जेहि ।।
कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ? ।।३६।।

सीस बसै बरदा, बरदानि चढ़्यो बरदा घरन्यौ बरदा है।
धाम धतूरो विभूति को कूरो, निवास तहाँ शव लै मरे दाहै ।।
ब्याली कपाली है ख्याली; चहूँदिसि माँग की टाटिन का परदा है।
राँकसिरोमनि काकि निभाग विलोकत लोकप को करदा है ।।३७।।

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचन्द सों कन्द सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है ।।
गोरी कि गंग बिहंगिनि वेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पया न समय सब सोच बिमोचन छेमकारी है ।।३८।।

बरवै रामायण

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग, सखि ! कोमल कनक कठोर ।।१।।
चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ ।।२।।
का घूँघट मुख मूंदहु नबला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ।।३।।
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ।।४।।
द्वै भुज कर हरि रघुबर सुन्दर वेष।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष ।।५।।
कुंजन-पाल गुन-बर्जित, अकुल, अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ ।।६।।
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ।।७।।
डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम ।।८।।
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया के मुँदरी कंकन होइ ।।९।।
केहि गिनती महँ ? गिनती जस बन घास।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास ।।१०।।
तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय ।।११।।

दोहावली

हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम ।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित सलाम ॥१॥
राम नाम को अंक है सब साधन हैं सून ।
अंक गये कछु हाथ नहिँ अँक रहे दसगून ॥२॥
नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान-निवास ।
जो सुमिरत भयो भाग तें तुलसी तुलसीदास ॥३॥
राम-नाम अवलम्ब बिनु परमारथ की आस ।
बरषत बारिद-बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥४॥
दपति-रस रसना दमन परिजन, बदन सुगेह ।
तुलसी हरहित बरन सिसु सम्पति सहज सनेह ॥५॥
बरषा ऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुदास ।
राम-नाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥६॥
रहे न जल भरि पूरि, राम । सुजस सुनि रावरो ।
तिन आँखिन में धूरि भरि-भरि मूठी मेलिये ॥७॥
हरो चरहि, तापहिं बरत, फरे पसारहि हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥८॥
राम दूरि माया बढ़ति; घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रवि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥९॥
करम कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान बिहीन ।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो रामदुआरे दीन ॥१०॥
तुलसी राम जो आदर्‌यो खोटों खरों खरोइ ।
दीपक काजर सिर धर्‌यो सुधर्‌यो धरोइ ॥११॥
तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर ।
तुलसी हरि भये पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥१२॥

चारि चहत मानस अगम, चनक चारि को लाहु ।
चारि परिहरे चारि को दानि चारि चख चाहु ।।१३।।
रघुपति कीरति-कामिनी क्यों कहै तुलसीदासु ?
सरद-अकास प्रकास ससि चारुचिबुक-तिल जासु ।।१४।।
भुज-तरु कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रवेस ।
बिहंगराज-बाहन तुरत काढ़िय, मिटइ कलेस ।।१५।।
बाहु-बिटप सुख-विहँग-थलु लगी कुपीर कुआगि ।
रामकृपा जल सींचिये, बेगि दीनहित लागि ।।१६।।
अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ।।१७।।
अंक अगुन, आखर सगुन समुझिय उभय प्रकार ।
खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु बिचार ।।१८।।
घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ ।
तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाइ ।।१९।।
तुलसी चातक माँगनो एक, एक घन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ।।२०।।
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि ।।२१।।
चरग चंगुगत चातकहिं नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर ।।२२।।
सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास जो अंचवै जल स्वाति को ।।२३।।
लै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाविष होइ ।।२४।।
तुलसी बैर सनेह दोउ रहित विलोचन चारि ।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहि सुरसरि-बारि ।।२५।।

उत्तमे मध्यम नीच गति पाहन, सिकता, पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ।।२६।।

भरदर बरषत कोससत बचैं जे बूँद बराइ ।
तुलसी तेउ खल-बचन-सर हये, गएँ न पराइ ।।२७।।

सहबासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रवीन ।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ?।।२८।।

सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति ।
तुलसी तापर चाहिये कीरति बिजय बिभूति ।।२९।।

लोकरीति फूटी सहैं, आँजी सहै न कोइ ।
तुलसी जो आँजी सहैं सो, आँधरो न होइ ।।३०।।

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु ।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ।।३१।।

तुलसी मीठी अमी तें माँगी मिलै जो मीच ।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच ।।३२।।

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम, बिबेक ।
साहित, साहस, सत्यब्रत, रामभरोसो एक ।।३३।।

कूप खनत मन्दिर जरत, आए धारि, बबूर ।
बवहिं नवहिं निज काज सिर कुमति-सिरोमनि कूर ।।३४।।

जो सुनि समुझि अनीति रत, जागत रहै जु सोइ ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ।।३५।।

अपजस-जोग कि जानकी, मनिचोरी की कान्ह ?
तुलसी लोग रिझाइबो, करषि कातिबो नान्ह ।।३६।।

तुलसी जुपै गुमान को हो कछु उपाय ।
तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहते रघुराउ ? ।।३७।।

तुलसी भेड़ी की धसनि जड़-जनता-सनमान ।
उपजतही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ।।३८।।

लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याल।
कल कोढ़ी कामा लही ? जग बहराइच जाइ ।।३९।।

तुलसी तोरत तीरतरु, बकहित हँस बिडारि।
बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरि हूँ बढ़ियारि ।।४०।।

प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन धाउ ।।४१।।

काल बिलोकत ईस-रुख, भानु काल अनुहारि।
रबिहिं राउ, राजहिं प्रजा, बुध व्यवहरहिं विचार ।।४२।।

माली भानु किसान सम, नीतिनिपुन नरपाल।
प्रजा-भागबस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ।।४३।।

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोई।
तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ ।।४४।।

सुधा सुनाज, कुनज, फल, आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजाहित लेहिं कर सामादिक अनुमानि ।।४५।।

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचाल भव भूरि ।।४६।।

काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ।।४७।।

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ।
बूड़त लखि पग डग लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ।।४८।।

रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु।
शांत सुसचिवन सौंपि सुखि बिलसहि नित नरनाहु ।।४९।।

मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धरम, तन तीनि कर होइ बेगिही नास ।।५०।।

उरबी परि कलहीन होइ, ऊपर कला प्रधान।
तुलसी देखु कलापगति, साधन-धन पहिचान ।।५१।।

तुलसी तृन जल-कूल को निरबल, निपट निकाज।
कै राखे, कै, सँग चलै; बाँह गहे की लाज ॥५२॥
रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै ? कलि-कुचाल पर प्रीति ॥५३॥
पात पात कै सींचिबो, बरी बरी को लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ? ॥५४॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भागति निरूपहिं मूढ़ कलि, निंदहिं बेद पुरान ॥५५॥
गोंड़ गंवार नृपाल महि, यवन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि; केवल दंड कराल ॥५६॥
तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ॥५७॥
रामचन्द्र-मुख-चन्द्रमा चित चकोर जब होइ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥५८॥
का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करे कुमाच ॥५९॥
मानि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज ॥६०॥

गीतावली

(१)

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ।।१।।

अति पुनीत मधुमास, लगन-ग्रह-बार-जोग-समुदाई ।
हरषवंत चर-अचर, भूमिसुर-तनरुह पुलक जनाई ।।२।।

बरषहि बिबुध-निकर कुसुमावलि नभ दुंदुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ।।३।।

सुनि दशरथ सुत जनम लिए सब गुरुजन प्रिय बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ।।४।।

सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय-नाथ हेतु निज-निज संपदा लुटाई ।।५।।

मनि-तोरन, बहु केतु-पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध-सूत द्वार बन्दीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ।।६।।

सहज सिंगार किए बनिता चली मंगल विपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित, चिर जिवौ तनय सुखदाई ।।७।।

बीथिन्ह कुकुम कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ।।८।।

अमित धेनु-गज-तुरग-बसन-मनि, जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ।।९।।

सुखी भए सुर-संत-भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई ।
सबै सुमन विकसत रवि निकसत, कुमुद बिपिन बिलखाई ।।१०।।

जा सुख-सिंधु-सकृत-सीकर तें सिव-बिरंचि-प्रभुताई ।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि, कौन जनत कहौं गाई ।।११।।
जे रघुबीर-चरन-चिंतक, तिन्हकी गति प्रगट दिखाई ।
अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसीदास तब पाई ।।१२।।

(२)

पौढ़िये सालन, पालने हौं झुलावौं ।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ।।१।।
बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि-खानि खुलावौं ।
तेई अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति-मृगनयनि बुलावौं ।।२।।
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराई फुलावौं ।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ।।३।।

(३)

सोइये लाल लाडिले रघुराई ।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई ।।१।।
हसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई ।
तुम सबके जीवन के जीवन, सकल सुमंगलदाई ।।२।।
मूल मूल, सुरबीथि-बेलि, तम तोम सुदल अधिकाई ।
नखत-सुमन नभ-बिटप बौंडि मनो छपा छिटकि छबि छाई ।।३।।
हौ जँभात, अलसात, तात ! तेरी बानि जानि मैं पाई ।
गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ।।४।।
बछरु छबीलो छगनमगन मेरे, कहति मल्हाइ मल्हाई ।
सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई ।।५।।

(४)

जागिये कृपानिधान जानराय रामचन्द्र !
जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे ।

राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ।।१।।
अरुन उदित, बिगत सरबरी, ससांक किरनहीन,
दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तारे।
मनहुँ ग्यानघन-प्रकास, बीते सब भव बिलास,
आस-त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ।।२।।
गोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु,
स्रवन, प्रानजीवन घन, मेरे तुम बारे।
मनहुँ बेद-बंदी-मुनिवृन्द-सूत-मागधादि,
बिरुद बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ।।३।।
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चचरीक,
गुँजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ।।४।।
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
तुलसिदास अति अनद, देखि कै मुखारबिंद,
छूटे भ्रमकंद परम मंद द्वन्द भारे ।।५।।

(५)

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री।
राजकुँवर-मूरति रुचिबे की रुचि सुविरंचि श्रम कियो है कितौ, री ।।१।।
नख-सिख सुन्दरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर रूप-सुधा भरिवे कहँ नयन-कमल कल कलज रितौ, री ।।२।।
मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतौ, री।
तुलसी प्रभु भंजिहै संभु-धनु, भूरिभाग सिय-मातु पितौ, री ।।३।।

(६)

दूलह राम, सीय दुलही री !
घन-दामिनि बर-बरन, हरन-मन, सुन्दरता नखसिख निबरी, री ॥१॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि सी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु, लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥२॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री ।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहुँ मही, री ॥३॥
तुलसीदास जोरी देखत सुख-सोभा अतुल, न जाति कही, री ।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनों, सिला लवनि रति-काम लही, री ॥४॥

(७)

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ।
राम लखन मेरी यहै भेंट, बलि जाउ जहाँ मोहि मिलि लीजै ॥१॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें ।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें ॥२॥
पुनि सिर नाइ नवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानों राम-रतन लै भाग्यो ॥३॥
तुलसी रविकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह बिषम हम पाई ॥४॥

(८)

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी ।
स्याम-गौर धनु-बान-तूनधर, चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥१॥
इन्हहिं बहुत आदहत महामुनि, समाचार मेरे नाह कहे, री ।
बनिता-बन्धु समेत बसे बन, पितु-हितु कठिन कलेस सहे, री ॥२॥
बचन परसपर कहति किराततिनि, पुलक गात, जल नयन बहे, री ।
तुलसी प्रभुहिं बिलोकति एकटक, लोचन जनु बिन पलक लहे, री ॥३॥

(९)

आइ रहे जबतें दोउ भाई।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥१॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप, त्रयताप नसाई ॥२॥
उकठेउ हरित भए जल-थलरुई, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत, फलत, पल्लवत, पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥३॥
सरित-सरनि सरसीरुह-संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहँग, मंचु गुञ्जत अलि जात, पथिक जनु लेतु बुलाई ॥४॥
त्रिविध समीर, वीर झर झरननि, जँह तँह रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग-जप-तप मन लाई ॥५॥
भए सब साधु किराति-किरातिनि, राम-दरस मिटि गई कलुषाई।
खग-मृग मुदित एक संग बिहरत सहज विषम बड बैर बिहाई ॥६॥
कामकेलि-बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई।
सकल भुवन-सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई ॥७॥
बन मिस मुनि; मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिलम-बड़ाई।
पुलक सिथिल तनु; सजल सुलोचनु, प्रमुदित मन जीवन फलु पाई ॥८॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि, सम्पति-महिका-मोद-मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लषन रामसिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥९॥

(१०)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु, प्रवेष बिसेष गिरि, देखत मन अनुरागत ॥१॥
चहुँदिसि बन संपन्न; बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित, प्रजा सकल सुख छावत ॥२॥
सोहत स्याम जलत मृदु घोरत धातु रँगमगे सृङ्गनि।
मनहूँ आदि अंभोज बिराजत, सेवति सुर-मुनि-भृङ्गनि ॥३॥

सिखर परस घनघटहिं, मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि, मनों उठ्यो है दसन धरि धरनी ।।४।।
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत, नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग ।
मानहुँ जग रचना विचित्र बिलसति बिराट अङ्ग-अंग ।।५।।
मंदाकिनिहि मिलत झरना, झरि-झरि भरि-भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे, मानौं राम-भगति के पाछे ।।६।।

(११)

माई री ! मोहि कोउ न समुझावै ।।
राम-गवन साँचौ किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ।।१।।
लगइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता ।
तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भए बिपरीता ।।२।।
दुख न रहै रघुपतिहिं विलोकत, तनु न रहै बिनु देखे ।
करत न प्रान पयान, सुनहु; सखि ! अरुझ परी यहि लेखे ।।३।।
कौसल्या के बिरह-बचन सुन, रोइ उठीं सब रानी ।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की पीर न जाति बखानी ।।४।।

(१२)

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों काज, सोचत राउ ।।१।।
तिलक को बाल्यो, दिये बन, चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्यो समुझि सील-सुभाउ ।।२।।
सीय-रघुबर-लषन बिनु भय, भभरि भगी न आउ ।
मोहिं बूझि न परत, यातें कौन कठिन कुघाउ ।।३।।
सुनि सुमंत ! कि आनि सुन्दर, सुवन सहित जिआउ ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ ।।४।।

(१३)

सुक सों गहवर हियें कहै सारो ।
बीर कीर ! सिय-राम-लषन बिनु लागत जग अँधियारो ।।१।।

पापिन चेरि, अयानि रानि, नृप हित-अनहित न बिचारो ।
कुलगुरु-सचिव-साधु सोचतु; बिधि को न बसाइ उजारो ।।२।।
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो ।
सुने न वचन करुनाकर के, जब पुर-परिवार सँभारो ।।३।।
भैया भरत भावते के सँग, बन सब लोग सिधारो ।
हम पँख पाइ पीजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ।।४।।
सुनि खग कहत अम्ब ! मौंगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो ।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन-गारो ।।५।।
जीवन जग जानकी-लखन को, मरन महीप सँवारो ।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत; कहा कछु चारो ।।६।।

(१४)

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो ।
लगी न सङ्ग चित्रकूट हुतें, ह्याँ कहा जात बह्यो ।।१।।
पति सुरपुर, सिय-राम-लषन बन, मुनि ब्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोई मृतक दह्यो ।।२।।
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ, बिध कहुँ कुलिस लह्यो ।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ? ।।३।।

(१५)

राघौ एक बार फिर आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहरो बनहि सिधावौ ।।१।।
जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! अब निपट बिसारे ।।२।।
भरत सौगुनी सार करत है, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे; मनहु कमल हिम-मारे ।।३।।
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन; कहियो मातु-संदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिनतें इन्हको बड़ो अँदेसो ।।४।।

(१६)

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृग मूरति मन मोरे ॥१॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत, ज्यों नवघन सुधा-सरोवर खोरे ॥२॥
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कण्ठ-रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख, लेइ सरद-ससि की छवि छोरे ॥३॥
जटा मुकुट सिर; सारस-नयननि गौहैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे ॥४॥
चितवत चकित कुरंग-कुरंगिनि, सब भए मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे ॥५॥

(१७)

दोनों रुचिर रचे पूरन कंद-मूल, फल-फूल।
अनुपम अमियहु तें, अंबक अवलोकत अनुकूल ॥
अनुकूल अंबक अम्बज्यों निज डिंब हित सन आनिकै।
सुन्दर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै ॥
छन भवन, छन बाहर, बिलोकति पंथ भूपर पानिकै।
दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम-पन पहिचानिकै ॥

(१८)

कपिके चलत सिय को मन गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो ॥१॥
कहन चह्यो संदेश, नहिं कह्यो, पियके जियकी जानि हृदय दुसह दुखदुरायो।
देखि सदा व्याकुल हरीश, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥२॥
मीचतें नीच लगी अमरता, छलको न बलको निरखि थल परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु प्रीति सों असीस दीन्हीं, ह्वै है तिहारोई मन भायो ॥३॥
करुना-कोप-लाज-भय-भरो कियो गौन, मौनही चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समौ तुलसी रसना रूखी, ताही तें परत गायो ॥४॥

(१९)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन ।
चित्त दै सुनहु राम करुनानिधि ! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ॥१॥
लोचन-नीर कृपिन के धन, ज्यों रहत निरन्तर लोचन-कोन ।
'हा' धुनि-खगी लाज-पिंजरी मँह राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥२॥
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन ।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहु, तेहि मग पगु न धर्‌यो तिहुँ पौन ॥३॥
तुलसिदास प्रभु ! दसा सीय की, मुख करि कहत होति अति गौन ।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हो तुम्ह आरत-आरति-दीन ॥४॥

(२०)

अबलौं मैं तोसों न कहे री ।
सुन त्रिजटा ! त्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ॥१॥
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सभाय दहे री ।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ॥२॥
सर-सरीर सूखे प्रान-बारिचर जीवन मास तजि चलनु चहे री ।
ते प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृप्ति लहे री ॥३॥
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक-बल, धीर सहित हुते जात बहे री ।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहे री ॥४॥
तुलसीदास सब सोच पोच मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री ।
अब सखि सिय संदेह परिहरु हिय, आइ गये दोउ बीर अहेरी ॥५॥

(२१)

जौ हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल-ज्यौं, आनि सुधा सिर नावौं ॥१॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि, अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥२॥
बिबुध-बैद बरबस अनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यों, सबहिं को पापु बहावौं ॥३॥

तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥४॥

(२२)

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं ॥१॥
सुन्दर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल-बल परिपूरन, जनु जनमी सिंगार-सविता हैं ॥२॥
धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भंवर सभग सब धाहैं।
बिलसति बीच बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं ॥३॥
सकल-भुवन-मंगल-मंदिर के, द्वार बिसाल सुहाई साहैं।
जे पूजी कौसिक-मख ऋषयनि, जनक-गनप, संकर-गिरजा हैं ॥४॥
भवधनु दलि जानकी बिबाही भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं।
परसुपानि जिन्ह किए महामुनि, जे चितए कबहू न कृपा हैं ॥५॥
जातुधानि तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।
जिन्ह रिपु मारि सरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं ॥६॥
दसमुख बिबस बिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं।
सुबस बसे गावत जिन्हके जस, अमर-नाग-नर सुमुखि सनाहैं ॥७॥
जे भुंज बेद-पुरान शेष सुक-सारद सहित सनेह सराहैं।
कल्पलताहु की कल्पलता बर, कामदुहहु की कामदुहा हैं ॥८॥
सरनागत-आरत-प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं।
करि आईं, करिहैं करती हैं तुलसिदास दासिन पर छाहैं ॥९॥

विनय पत्रिका

(१)

गाइये गनपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥१॥
सिद्धि-सदन, गजबदन-बिनायक । कृपा-सिन्धु सुन्दर, सब-लायक ॥२॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता । विद्या-बारिधि, बुद्धि-विधाता ॥३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥४॥

(२)

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरे सों झूठ क्यों कहौंगो ,
जानौ सबही के मन की ।
करम बचन-हिये, कहौं न कपट किये, ऐसी हठ जैसी गांठि
पानी परे सन की ॥१॥
दूसरो, भरोसो नाहिं, बासना उपासना की, बासव, बिरंचि
सुर-नर-मुनिगन की ।
स्वारथ के साथी, मेरे हाथ स्वान लेवा देई, काहू तो न पीर
रघुबीर ! दीनजन की ॥२॥
साँप-सभा साबर लाबर भये देव दिव्य, दुसह साँसति कीजै
आगे ही या तन की ।
साँच परौं, पाऊँ पान, पंच में पन प्रमान, तुलसी चातक आस
राम स्यामघन की ॥३॥

(३)

देव—

तू दयालु, दीन हौं; तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी ॥१॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ।।२।।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हित मेरो ।।३।।
तोहिं मोहि नाते अनेक; मानियै जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ।।४।।

(४)

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ ।
मोद न मन; तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ ।।१।।
सिसुपन तें पितु, मातु बन्धु गुरु, सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ।।२।।
खेलत सङ्ग अनुज बालक नित, जोगवत अनट उपाउ ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ।।३।।
सिला साप सन्ताप बिगत भइ, परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए को पछिताउ ।।४।।
भवधनु भंजि निदरि भूपति, भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।
छमि अपराध; छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ ।।५।।
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ ।
ता कुमातु को मन जोगवत, ज्यों निज तन मरम कुघाउ ।।६।।
कपि सेवाबस भये कनौड़े कह्यो पवनसुत आउ ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ ।।७।।
अपनाये सुग्रीव विभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ ।
भरतसभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ।।८।।
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम-प्रतन जस बरनत, सुनत कहत फिर गाउ ।।९।।
समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ ।
तुलसिदास अनायास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ ।।१०।।

(५)

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतित-पावन जग ? केहि अति दीन पियारे ? ।।१।।
कौन देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन, सुर तारे ? ।।२।।
देव दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया-बिबस बिचारे ?
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ? ।।३।।

(६)

यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई ।।१।।
चहौं न सुगति सुमिति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढौ अनुदिन अधिकाई ।।२।।
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआईं ।
तहँ तहँ जिन छिन छोह छाँड़ियो; कमठ-अंड की नाईं ।।३।।
यहि जग में जहँ लगि, या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों होहिं सिमिट इक ठाईं ।।४।।

(७)

केसव ? कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तब रचना बिचित्र अति समुझि मन-मनहिं रहिये ।।१।।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति-दुख, पाइय एहि तनु हेरे ।।२।।
रबिकर-निकर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन-हीन सो ग्रसैं चराचर, पान करत जे जाहीं ।।३।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।४।।

(८)

जो निज मन परिहरै बिकारा ।

(८)

तौं कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय सोक अपारा ॥१॥
सत्रु, मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआईं ।
त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं ॥२॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे ।
सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य तन तैसे ॥३॥
बिटप मध्य पत्रिका, सूत महँ कंचुकि बिनहि बनाये ।
मन महँ तथा लीन नाना तन, प्रगटत अवसर पाये ॥४॥
रघुपति-भगति-बारि छालित, चित बिनु प्रयास ही सूझै ।
तुलसिदास कह चिद-बिलास, जग बूझत बूझत बूझै ॥५॥

(९)

बिस्वास इक राम-नाम को ।
मानत नहिं परतीति अनत, ऐसोई सुभाव मन बाम को ॥१॥
पढ़िबो परचो न छठी छमत ऋगु जजुर अथर्वन साम को ।
व्रत तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छाम को ॥२॥
करमजाल कलिकाल कठिन, अधीन सुसाधित दाम को ।
ज्ञान बिराग जोग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ॥३॥
सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक गुन ग्राम को ।
बैठे नाम कामतरु-तर डर कौन-घोर घन घाम को ॥४॥
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को ।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥५॥

(१०)

कबहुँक हौ यदि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो ॥१॥
जथालाभ सन्तोष सदा, काहु सों कछु न चहौंगो ।
पर-हित-निरत-निरन्तर मन क्रम, बचन नेम निबहौंगो ॥२॥

परुषबचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहि दोष कहौंगो ।।३।।
परिहरि देहजनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भक्ति लहौंगो ।।४।।

(११)

नाहिंन आवत आन भरोसो ।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो ।।१।।
तप तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो ।
पाएहि पै जानिबो करम-फल, भरि-भरि बेद परोसो ।।२।।
आगम-बिधि जप-जाग करत नर, सरत न काज खरो सो ।
सख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग वियोग धरो सो ।।३।।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो ।
बिगरत मन संन्यास लेत, जल नावत आम घरो सो ।।४।।
बहुमत सुनि बहु पंथ पुराननि, जहाँ-तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो ।।५।।
तुलसी बिनु परतीत प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै, मरो सो ।
रामनाम-बोहित भव-सागर चाहै तरन, तरो सो ।।६।।

(१२)

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ।।१।।
बाँस पुरान साज सब अठ कठ, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचद, मंद मोल बिनु डोला रे ।।२।।
विषम कहार मार-मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ।।३।।
काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठांवहिं ठाउँ बझाऊ रे ।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लटाऊ रे ।।४।।

मारग अगम; संग नहीं सम्बल, नाऊँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसीदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

(१३)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥१॥
करम, उपासन, ज्ञान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो 'सावन के अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो ॥२॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो ॥३॥
स्वारथ ओ परमारथ हू को नहिं कुञ्जरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि कर कपि-कटक तरो ॥४॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥५॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहिं तें तुलसिहि समुझि परो ॥६॥

(१४)

प्रन करि हौं हठि आजू ते रामद्वार पर्‌यो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि;
प्रभु की सौं मरि निबरह्यो हौं ॥१॥
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टर्‌यो हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग,
नरक निदरि निकर्‌यो हौं ॥२॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं; जेहि लागि अर्‌यो हौं।
तुम दयालु, बनिहै दिये बलि, बिलम्ब न कीजिये,
जात गलानि गिर्‌यो हौं ॥३॥
प्रकट कहत जो सकुचिये, अपराध भर्‌यो हौं।
तौ मन में अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि,
कलि बिलोकि हहर्‌यो हौं ॥४॥

(१५)

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यो,
तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहैं।
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सों,
चहुँ बिधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै।
हरषि है न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित,
कलिकुचालि परिहरि है;
प्रभु-गुन सुनि सेन हरषि है, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को, बिस्वास प्रेम
लखि आनन्द उमगि उर भरिहै ॥५॥

(१६)

द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा,
दुख-दोष-दलन-छम, कियो न संभाषन काहूँ।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिताहू।
काहे को रोष, दोष काहि धौं,
मेरे ही अभाग मोसो सकुचत छुई सब छाँहू।
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु-पाँवर-पातकी परिहरे न सरन गये,
रघुबर ओर निबाहू।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति बिनाहूँ।
नाम की महिमा, सीलनाथ को,
मेरो भलो बिलोकि अबतें सकुचाहुँ, सिहाहूँ ॥५॥

रामचरितमानस

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर बदन ।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन ।।१।।
कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करौ कृपा मर्दन मयन ।।२।।
बंदौं गुरपद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिअ मूरिमय चूरनु चारू । समन सकल भवरुज परिवारू ।।
सुकृति संभु तन बिमल बिभूति । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किएँ तिलक गुनगन बसकरनी ।।
श्रीगुरपद नख मनिगन जोती । सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती ।।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ।।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के । मिटहि दोष दुख भव रजनी के ।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहिं खानिक ।।
जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ।।
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिअ दृगदोष बिभंजन ।।
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ।।

× × ×

जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ।।
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहूँ बेद न आन उपाऊ ।।
बिनु सतसंग बिबेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
सतसंगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ।।

बिधि हरि हर कबि कोविद बानी । कहत साधुमहिमा सकुचानी ।।
सो मो सन कहि जात न कैसें । साकबनिक मनिगुन गन जैसें ।।

बंदौं संत समाज चित हित अनहित नहिं कोउ ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ ।
सन्त सरलचित जगतहित जानि सुभाउ सनेहु ।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु ।।

बहुरि बंदि खलगन सति भाएँ । जे बिन काज दाहिनेहु बाएँ ।।
परहित हानि लाभ जिन्ह केरें । उजरें हरष बिषाद बसेरें ।।
हरि हरि जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।।
जे पर दोष लखहिं सहसाँखी । परहित घृत जिन्ह के मन माँखी ।।
तेज कृसानु रोष महिषेसा । अघ अवगुन धन धनी धनेसा ।।
उदय केतु सम हित सब ही के । कुंभकरन सम सोवत नीके ।।
पर अकाज लगि तन परिहरहीं । जिमि हित उपल कृषी दलि गरहीं ।।
बंदौं खल जस सेष सरोषा । सहस बदन बरनई परदोषा ।।
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना । पर अघ सुनइ सहस दस काना ।।
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही । संतत सुरांनीक हित जेही ।।
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा । सहस नयन परदोष निहारा ।।

उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति ।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति ।।

× × ×

जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुन ग्रहहि पय, परिहरि बारि बिकार ।।
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बंदौं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि ।।

आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीवा जल थलनभ बासी ।।
सीय राम मय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ।।
जानि कृपाकर किंकर मोहू । सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू ।।

निज बुधि बलभरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥
करन चहौं रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोर चरित अवगाहा॥
सूझ न एकौ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरै न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥
जौं बालक कह तोतिरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे परदूषन भूषन धारी॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे परभनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़ै जोई॥

भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥

× × ×

कबि न होउँ नहि बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भावभेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहि मोरें। सत्य कहौं लिखि कागद कोरें॥

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्वबिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह के बिमल बिबेक॥
प्रिय लागिहि अति सबहिं मम भनित राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलयप्रसंग॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी मनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहि अनत अनत छबि लहहीं॥

भगत हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
रामचरित सर बिनु अन्हवायें। सो श्रम जाई न कोटि उपायें॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमलहारी॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाती सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरषै कर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥

जुगुति वेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥

× × ×

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

× × ×

बरषा रितु रघुपतिभगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

× × ×

एकु छत्रु एक मुकुटमनि सब बरनि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के धरन बिराजत दोउ॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भुदु समुझिहहिं साधू॥
देखिहि रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहि नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतलगत न परहिं पहिचाने॥
सुमिरिअ नामु रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिनु नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहुँ जों चाहसि उजिआर॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ।।
मोरे मत बड़ नामु दूहूँ तें। किये जेहि जुग निज बस निज बूते ।।
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ।।
एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ।।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ।।
ब्यापक एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी ।।
नाँमनिरूपन नाम जनत तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ।।

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुननाथ ।।

× × ×

सगुनहि अगुनहि नाहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ।।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोहप्रसंगा ।।
राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ।।
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिज्ञान बिहाना ।।
हरष बिषाद ज्ञान अज्ञाना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना ।।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना ।।

रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोई, भ्रम न सकै कोउ टारि ।।

× × ×

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखाधुनि कान।
गुर ते पहिलेहि जगतपति जागे रामु सुजान ।।

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहिं सिर नाए ।।
समय जानि गुर आयेसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।
भूपबागु बर देखेउ जाई। जहँ बसन्त रितु रही लोभाई ।।
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन-बरन बर बेलि बिताना ।।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सम्पति सुररूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनिसोपान विचित्र बनावा॥
बिमलसलिलु सरसिज बहु रङ्गा। जलखग कूजत गुञ्जत भृङ्गा॥

बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु येहु जो रामहि सुख देत॥

चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
सङ्ग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानी॥
सर समीप गिरिजागृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गईं मुदित मन गौरिनिकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥
एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहि दोउ बन्धु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहि पाई॥

तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन।
कहु कारन निज हरष कर पूछहि सब मृदु बयन॥

देखन बाग कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सने जे मुनि सँग आए काली॥
जिन्ह निजरूप मोहिनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अब देखिअहिं देखन जोगू॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥

सुमिरि सीय नारदबचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जन सिसु मृगी सभीत॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही । मनसा बिस्व ब्रिजय कहँ कीन्ही ।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सियमुख ससि भए नयन चकोरा ।।
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहु सकुचि निमि तजे द्रिगंचल ।।
देखि सीय सोभा सुखु पावा । हृदय सराहत बचनु न आवा ।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ।।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई । छबिगृह दीपसिखा जनु बरई ।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहि पटतरौं बिदेहकुमारी ।।

सिय शोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि ।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ।।

तात जनक तनया यह सोई । धनुषजग्य जेहि कारन होई ।।
पूजन गौरि सखीं लै आई । करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ।।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।
सो सबु कारन जान विधाता । फरकहिं सुभद अङ्ग सुन भ्राता ।।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ ।।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ।।
जिन्ह कै लहहिं न रिपुरन पीठी । नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरवर थोड़े जग माहीं ।।

करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लोभान ।
मुख सरोज मकरंद छबि करै मधुप इव पान ।।

चितवति चकित चहुँ दिसि सीता । कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता ।।
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी । जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ।।
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ।।
थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषें ।।
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहिं जनु चितब चकोरी ।।

लोचनमग रामहिं उर आनीं। दीन्हे पलक कपट सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानीं। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानीं ॥
लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥
सोभासीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा ॥
मोरपङ्ख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ॥
भाव तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए ॥
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला ॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहिं पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥
उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा ॥
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना ॥
केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहिं बिसरा सखिन्ह अपान ॥
धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे ॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पितापनु मनु अति छोभा ॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब येहि बेरियाँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सँकुचानी। भयउ बिलंबु मातुभय मानी ॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितु बस जाने ॥
देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥

× × ×

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
बिगत दिवसु गुर आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई ॥

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा । सियसुख सरिस देखि सुख पावा ।।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ।।
जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दीन मलिन सकलंकु ।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंकु ।।
घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई । ग्रसै राहु निज संधिहि पाई ।।
कोक सोकप्रद पंकजद्रोही । अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही ।।
बैदेहीमुख पटतर दीन्हे । होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे ।।
सिय मुखछबि बिधु ब्याज बखानी । गुर पहि चले निसा बड़ि जानी ।।
करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा ।।
बिगत निसा रघुनायक जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ।।
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ।।
बोले लखनु जोरि जुग पानी । प्रभुप्रभाउ सूचक मृदु बानी ।।
अरुनोदय सकुचे कुमुद उड़गन जोति मलीन ।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ।।
नृप सब नखत करहिं उजिआरी । टारि न सकहिं चाप तम भारी ।।
कमल कोक मधुकर खग नाना । हरषे सकल निसा अवसाना ।।
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे । होइहहिं टूटें धनुष सुखारे ।।
उएउ भानु बिनु श्रम तम नासा । दुरे नखत जग तेजु प्रकासा ।।
रबि निज उदय ब्याज रघुराया । प्रभुप्रतापु सब नृपन्ह दिखाया ।।
तव भुजबल महिमा उदघाटी । प्रगटी धनुविघटन परिपाटी ।।
बंधुबचन सुनि प्रभु मुसुकाने । होइ सुचि सहज पुनीत नहाने ।।
रंगभूमि आए दोउ भाई । असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ।।

× × ×

राज कुँअर तेहि अवसर आये । मनहु मनोहरता तन छाये ।।
गुनसागर नागर बर बीरा । सुंदर स्यामल गौर सरीरा ।।
राजसमाज बिराजत रूरे । उड़गन महु जनु जुग बिधु पूरे ।।
जिन्ह कै रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।

देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीररसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रकट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनकजाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहिं चितव भाय जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोउ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ॥

राजत राजसमाज महु कोसलराजकिसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तन बिस्वबिलोचन चोर॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥
चितवनि चारु मारमन हरनी। भावति हृदय जाति नहि बरनी॥
कल कपोल श्रुतिकुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥
कुमुदबंधुकर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई॥
रेखैं रुचिर कंबु कल गीवा। जनु त्रिभुवनसुषमा की सीवा॥

कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिकामाल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष बाम बर काँधे ।।
पीय जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए ।।
देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे ।।
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनिपद कमल गहे तब जाई ।।
करि बिनती निज कथा सुनाई। रग अवनि सब मुनिहिं देखाई ।।
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ ।।
निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेषा ।।
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ ।।

सब मंचन्ह तें मंचु एक सुन्दर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ पैठारे महिपाल ।।

× × ×

जानि सुअवसरु सीय तब पठइ जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुन्दर सकल सादर चलीं लिवाइ ।।

सियसोभा नहि जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी ।।
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी ।।
सिय बरनिअ तेइ उपमा देइ। कुकबि कहाइ अजसु को लेई ।।
जौ परतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया ।।
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनुपति जानी ।।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही ।।
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कछपु सोई ।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू ।।

येहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ।।

चली संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी ।।
सोह नवल तन सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी ।।
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ।।
रंगभूमि जब सिय पगु धारीं। देखि रूप मोहे नर नारीं ।।

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई ॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहिं चाहा। भए मोह बस सब नर नाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥

गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥

रामरूपु सिय छवि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
हरु बिधि बेगि जनकजड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू ॥
जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अतहु उर दाहू ॥
येहि लालसा मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
तब बन्दीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चल भाट हिय हरषु न थोरा ॥

बोले बदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥

नृपभुज बलु बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे ॥
सोई पुरारिकोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिँ बिचार बरइ हठि तेही।
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चखे इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥
तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं ॥

तमिक धरहिं धनु मूढ़ नृप उठे न चलहिँ लजाइ।
मनहु पाइ भटबाहु बल, अधिकु अधिकु गरुआइ ॥

भूप सहस दस एक एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा ॥
डगइ न संभुसरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें ॥
सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग सँन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चापकर बरबस हारी ॥
श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने ॥
दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुजसरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा ॥

कुँअरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ॥

कहहु काहि यह लाभु न भावा। काहु न संकरचाप चढ़ावा ॥
रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीरबिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहिबिबाहू ॥
सुकृत जाइ जौ पनु परिहरऊँ। कुआँरि कुआँरि रहइ का करऊँ ॥
जौ जनतेउँ बिनु भट भुइँ भाई। तो पनु करि होतेउँ न हसाई ॥
जनकबचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी ॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें ॥

कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान ॥

रघुबंसिन्ह मह जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई ॥
कही जनक जस अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कुछ अभिमानू ॥
जौ राउर अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना ॥

नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुक करौं बिलौकिअ सोऊ ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं । जोजन सत प्रमान लै धावौं ॥
तोरौं छत्रकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।
जौ न करौं प्रभुपन सपथ कर न धरौं धनु भाथ ॥
लखन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोग सब भूप डेराने । सियहिय हरषु जनकु सकुचाने ॥
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं ॥
सयनहि रघुपति लखनु नेवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति सनेहमय बानी ॥
उठहु राम भंजहु भव चापा । मेटहु तात जनक परितापा ।
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा । हरषु विषादु न कुछ उर आवा ॥
ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए । ठवनि जुवा मृगुराज लजाए ॥
उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपंतग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरसहि सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुरपद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आएसु माँगा ॥
सहजहि चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजर गामी ॥
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे । जौं कुछ पुन्य प्रभाउ हमारे ॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं । तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं ॥

× × ×

प्रभुहिं चित पुनि चितव महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ॥
गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
लोचनजलु रह लोचन कोना । जैसे परम कृपन कर सोना ॥

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी ॥
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपतिपद सरोज चितु राचा ॥
तौ भगवान सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू ॥
प्रभु तन चितै प्रेमपन ठाना। कृपा निधान राम सबु जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसे ॥

लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हरकोदंड।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मण्डु ॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकरधनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अज्ञानू। मन्द महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥
संभुचाप बड़ बोहितु, पाई। चढ़ जाइ सब संगु बनाई ॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कड़हारू ॥

राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥

× × ×

गुरहि प्रनामु मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढें। काहु न लखा देख सबु ठाढ़ें ॥
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

भरे भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंउ खँडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

संकरचापु जहाज सागरु रघुबरबाहु बलु।
बूड़ सो सकल समाजू चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस ॥

× × ×

तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयेउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥
सीस जटा ससि बदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटि कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥
वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनि बसन तून दुई बाँधे। धनु सर कर कुठाल कल काँधे ॥
सांत वेषु करनी कठिन बरति न जाइ सरूप।
धनि मुनि तनु जनु बीररसु आयउ जहँ सब भूप ॥

●

अयोध्या कांड

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि कर गई गिरा मति फेरि ॥
दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उरदाहू ॥
करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवनि बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ॥
भरतमातु पहिं गइ बलिखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारिचरित करि ढारइ आँसू ॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाँड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥
सभय रानि कह कहसि किन कुसल राम महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देइ जुवराजू ॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन ॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें । जानति हहु बस नाहु हमारें ॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहूँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी ॥

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि ॥

प्रियबादिनी सिख दीन्हिउँ तोहीं । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोहीं ॥
सुदिनु सुमंगलदायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुलरीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली । देउँ मगु मन भावत आली ॥
कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीतिपरीछा देखी ॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरें ॥

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहिं सुनाउ ॥

एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती । नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥
करि कुरुप बिधि परबस कीन्हा । बुवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होइ हमहि का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी॥
गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुद्धि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥
सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरीं गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जस भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥
तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी॥
तुम्हहिं न सोचु सोहागबल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुँह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥
चतुर गँभीर राममहतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरतु भूप ननिऔरें। राम मातु मत जानब रौरें॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरतमातु बल पी के॥
सालु तुम्हार कौसलहि माई। कपटचतुर नहिं होइ जनाई॥
राजहि तुम्ह पर प्रेम बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहिं अपनाई। रामतिलक हित लगन धराई॥
यहि कुल उचित रामकहुँ टीका। सबहिं सोहाइ मोहिं सुठि नीका॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥
रचि रचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥
भावीबस प्रतिति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥
भयउ पाखु दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोह सन आजू॥

खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहि दोषु हमारें॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देहहि हमहिं सजाई॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहिं कौसिलाँ देब।
भरत बन्दिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँख नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ रीति कुसपते। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

अपने चलत न आजु लगि अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवतिसेवकाई॥
अरिबस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीकु तेहि जीव न चाही॥
दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥
जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिहि खाँची। भरत भुआल होहिँ एहु साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥

परउँ कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥

× × ×

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासुपद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥
दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥
चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥
मंजु बिलोचनि मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहुँ सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहिं पियारी॥
पिता जनक भूपाल मुनि ससुर भानुकुलभानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥
मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सील सुहाई॥
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउ प्रान जानिकिहि लाई॥
कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भएउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहऊँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयेसु काह होत रघुनाथा॥
चंदकिरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी॥
करि केहरि निसिचिर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
विष बाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥
बन हित कोल किरात किसोरीं। रचीं बिरंचि विषय सुख भोरीं॥
पाहनकृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापसतिय काननजोगू। जिह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनजबन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥

असु बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥

कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं प्रगटि बिपिन गुन दोष॥

राजकुमारि सिखावन सुनहूँ। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहूँ॥
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासुसेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि ते अधिक धरम नहि दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मति भोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। संदरि समुझाएहु मृदु बानी॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखौं तोही॥

गुरु श्रुति संमत धरमफलु पाइअ बिनहि कलेस।
हठबस सब सङ्कट सहे गालव नहुष नरेस॥

मैं पुनि करि प्रवान पितुबानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
काननु कठिन भयङ्करु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

भूमि सयन बलकल बसन असन कन्द फल फूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिँ सबुइ समय अनुकूल॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट वेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिनबिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचरनिकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानससलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली॥
नव रसालबन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥

सज सहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहिं सरद चंद निसि जैसे॥
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी॥
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पियबियोग सम दुखु जग नाहीं॥

प्रान नाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥
राखिअ अवध जों अवधि लगि रहत जानिअहि प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान॥

× × ×

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु खलनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगमकह॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहिं को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई॥

तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु सन्त सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥
रास देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिन आचा ॥

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तह कहि तुम्हहि तेखावऊँ ठाऊँ ॥

सुनहु राम अब कहौं निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप विन्दु जल होहि सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥

जसु तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गनि चुनइ राम बसहु मन तासु ॥

प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निबेदित भोजनु करहीं। प्रभुप्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुर द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। राम भरोस हृदय नहि दूजा ॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माँहीं ॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियजानी। सकल भाय सेवहिं मनमानी ॥

सबु करि मागहिं एक फलु रामचरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुदन्दन दोउ ॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दंभ नहि माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहि परनारी । धनु पराव विष तें विष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी । दुखित होहिं परबिपति बिसेषी ॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रानपिआरे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीतिनिपुन जिन्ह कइ जग लीका । चर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई । तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहिं के उर डेरा ॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥

× × ×

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान ॥

बिषई जीव पाई प्रभुताई । मूढ़ मोहबस होहिं जनाई ॥
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभुपद प्रेमु सकल जगु जाना ॥
तेऊ आजु रामपदु पाई । चले धरममरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥
करि सुमंत्र मन साजि समाजू । आए करै अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटलाई । आए दल बटोरि दोऊ भाई ॥

जौं जिय होति न कपट कुचालि । केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ।।
भरतहिं दोसु देई को जाएँ । जग बौराइ राजपदु पाएँ ।।
ससि गुरतियगामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुरजान ।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम को बेन समान ।।
सहसबाहु सुर नाथ त्रिसंकू । केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ।।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रंच न राखब काऊ ।।
एक कीन्हि नहि भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ।।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी । समर सरोष राम मुखु पेखी ।।
एतना कहत नीति रस भूला । रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ।।
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बलु भाषी ।।
अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहिं उपचरा न थोरा ।।
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें । नाथ साथ धनु हाथ हमारें ।।
छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान ।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ।।
उठि कर जोरि रजायसु मागा । मनहुँ बीर रस सोवत जागा ।।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासनु सायकु हाथा ।।
आजु राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहिं समर सिखावन देऊँ ।।
राम निरादर कर फलु पाई । सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ।।
आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ।।
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ।।
तैसेहि भरतहिं सेन समेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ।।
जौं सहाय कर संकरु आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ।।
अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान ।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ।।
जगु भय मगन गगन भइ बानी । लखन बाहु बलु बिपुल बखानी ।।
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ।।
अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ।।

सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ।।
सुनि सुरबचन लखन सकुचाने । राम सीयँ सादर सनमाने ।।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सबतें कठिन राजमदु भाई ।।
जो अचवँत नृप मातहिं तेई । नाहि न साधुसभा जेहिं सेई ।।
सुनहु लखन भल भरत सरीरा । विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।।

भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजीसीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ।।

तिमिरु तरुन तरिनिहि मकु गिलई । गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ।।
नोपदजल बूढ़हिं घटजोनी । सहज छमा बरु छाँड़इ छोनी ।।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमदु भरतहिं भाई ।।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ।।
सगुनु खीरु अवगुनु जलु ताता । मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ।।
भरतु हँस रविबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुनदोष बिभागा ।।
गहि गुन पय तजि अवगुनु बारी । निज जस जगत कीन्हि उजिआरी ।।
कहत भरत गुन सील सुभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ।।

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भगत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ।।

जौं न होत जरा जनम भरत को । सकल धरम धुरधरनि घरत को ।।
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानई तुम्ह बिनु रघुनाथा ।।

अरण्य कांड

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन काहे छलहीना ।।
सुर नर मुनि सचराचर साईं । मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ।।
मोहि समुझाई कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ।।
कहहु ज्ञान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ।।

ईश्वर जीवहि भेद सकल कहहु समुझाइ ।
जाते होइ चरनरति सोक मोह भ्रम जाइ ।

थोरेंहि महु सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई।।
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीवनिकाया।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेउ भाई।।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा।।
एक रचै जग गुन बस जाकें। प्रभुप्रेरित नहि निज बल ताकें।।
ज्ञान मान जहँ एकहु नाहिं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।।
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम तीनि गुन त्यागी।।

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव।।

× × ×

चले राम बन त्यागा सोऊ। अतुलित बल नरकेहरि दोऊ।।
विरही इव प्रभु करत विषादा। कहत कथा अनेक संवादा।।
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा।।
नारि सहित सब खग मृग बृन्दा। मानहुँ मोरि करत हरिहिं निन्दा।।
हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं।।
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कंचनमृग खोजन ए आए।।
संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोंहि सिखावनु देहीं।।
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ।।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती शास्त्र नृपति बस नाहीं।।
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।।

बिरहबिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्हि बगमेल।।
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तव कटकु हटकि मनजात।।

विटप विसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।।
कदलि नाल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका।।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जन बानैत बने बहु नाना ।।
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये । जनु भट बिलग बिलग होइ छाये ।।
कूजत पिक मानहु गज माते । ढेक महोख ऊँट बिसरा ते ।।
मोर चकोर कीर वर बाजी । पारावत मराल सब ताजी ।।
तीतिर लावक पदचरजूथा । बरनि न जाइ मनोजबरूथा ।।
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना । चातक बन्दी गुनगुन बरना ।।
मधुकर मुखर भेरि सहनाई । बिबिध बयारि बसीठीं आई ।।
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें । बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ।।
लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्हकै जग लीका ।।
एहि के एक परम बल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ।।

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिज्ञान धाम मन करहिं निमिष महूँ छोभ ।।
लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल मुनिवर कहहिं बिचारि ।।

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अन्तरजामी ।।
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ।।
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ।।
सों नर इन्द्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ।।
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ।।
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गम्भीरा ।।
सन्तहृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट नोहर चारी ।।
जहँ तहँ पिअहिं विविध मृग नीरा । जनु उदारगृह जाचकभीरा ।।

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिए जैसें निर्गुन ब्रह्म ।।
सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुखसंजुत जाहिं ।।

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुञ्जत बहु भृंगा ।।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ।।
चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनई बरनि नहि जाई ।।
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई ।।
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए ।।
चंपक बकुल कदम्ब तमाला। पाटल पनस परास रसाला ।।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीकपटली कर गाना ।।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ ।।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ।।

फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ।।

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ।।
देखी सुन्दर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया ।।
तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति कर निज धाम सिधाए ।।
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ।।
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच विसेषी ।।

× × ×

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ।।
राम जबहिं प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहिं सुनहु रघुराया ।।
तब बिवाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करइ न दीन्हा ।।
सुनु मुनि तोंहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोंहि तजि सकल भरोसा ।।
करौं सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ।।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाइ। तहँ राखइ जननी अरु गाई ।।
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नाहिं पछिलि वाता ।।
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुन सम दास अमानी ।।
जनहिं मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ।।
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहि तजहीं ।।

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कइ धारि।
तिन्ह मह अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ।।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ।।
जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहिं हरषप्रद बरषा एका ।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ।।
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा। होइ हिम तिन्हहि देति दुख मंदा ।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ।।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ।।
बुधि बलि सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।।

भवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
तातें कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ।।

किष्किन्धा कांड

लछिमन देखहु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस विष्णुभगत कहुँ देखि ।।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन तरपत मन मोरा ।।
दामिनि दमकि रही घनमाहीं। खलकै प्रीति जथा थिर नाहीं ।।
बरषहिं जलद भूमि नियराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खलके बचन संत सह जैसें ।।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल बौराई ।।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी ।।
सिमिट सिमिट जल भरहिं तलाबा। जिमि सदगुन सज्जन पहि आवा ।।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होई अचल जिमि जिव हरि पाई ।।

हरित भूमि तृनसंकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाषंड बादतें लुप्त होहिं सदग्रन्थ ।।

दादुरधुनि चहुँ दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका । साधक मन जस मिलें बिबेका ।।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गएऊ ।।
खोजत कतहुँ मिलई नहिं धूरी । करै क्रोध जिमि धरमहि दूरी ।।
ससि संपन्न सोह महि कैसी । उपकारी के संपति जैसी ।।
निसि तम घन खद्योत बिराजा । जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ।।
महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं । जिमि बुध तर्जहिं मोह मद माना ।।
देखिअत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ।।
ऊषर बरसइ तृन नहिं जामा । जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ।।
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।।
जहँ तहँ रहें पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रियगन उपजें ग्याना ।।

कबहुँ प्रबल यह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ।।
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँ क प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजी ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।

बरषा बिगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ।।
फूलें कास सकल महि छाई । जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई ।।
उदित अगस्ति पंथ जल सोखा । जिमि लोभहिं सोखै सन्तोषा ।।
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ।।
रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ।।
जानि सरद रितु खंजन आए । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ।।
पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति निपुन नृप कै जस करनी ।।
जल संकोच बिकल भई मीना । अबुध कुटुम्बी जिकि धनहीना ।।
बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन ईव परिहरि सब आसा ।।
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ।।

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ।।

सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकौ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसा । निर्गुण ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥
गुञ्जत मधुकर मुखर अनूपा । सुंदर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रवाकमन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई । संतदरस जिमि पातक टरई ॥
देख इन्दु चकोरसमुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिमत्रासा । जिमि द्विजद्रोह किएँ कुलनासा ॥

भूमि जीवसंकुल रहे गए सरद रितु पाइ ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥

लङ्का-काण्ड

लव निमेष परमानु जुग वरष कलप सर चण्ड ।
भजसि न मन तेहि रामकहँ काल जासु कोदण्ड ॥

× × ×

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।
कहत सबहि देखहु ससिहिं मृगपति सरिस असंक ॥

पूरब दिसि गिर गुहा निवासी । परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुम्भ बिदारी । ससि केसरी गगन बन चारी ॥
बिथरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुन्दरी केर सिङ्गारा ॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महुँ प्रगट भूमि कै झांई ॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई । उर महँ परी स्यामता सोई ॥
कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्हा । सार भाग ससिकर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माही । तेहि मग देखिअ नभ परछाहीं ॥
प्रभु कह गरल बन्धु ससि केरा । अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
बिष संजुत कर निकर पसारी । जारत बिरहवन्त नर नारी ॥

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तब मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥
पवनतनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपानिधान ॥

देखु बिभीषन दच्छिन अकासा। घनघमण्ड दामिनीबिलासा ॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा ॥
कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा ॥
छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी ॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ॥
प्रभु मुसकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना ॥

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सब के देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ॥
अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि कहा रसभंग ॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ॥
सोचहिं सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी ॥
दसमुख दीखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई ॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही ॥
सयन करहु निज निज गृह जाई। गबने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब तें श्रवनपूर महि खसेऊ ॥
सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत राम विरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ॥

विस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोककल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जास ॥

पद पाताल सीस अजधामा। अपर लोक अँग अँग विश्रामा ॥
भृकुटिबिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घनमाला ॥

जासु घ्रान अस्वनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ।।
रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नसजारा ।।
उदर उदधि अधगो जतना। जगमय प्रभु का बहु कल्पना ।।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान् ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।।
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभुसन बयरु बिहाइ ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ।।

बिहसा नारिबचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना ।।
नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं ।।
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असोच अदाया ।।
रिपु कर रूप सकत तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा ।।
सो सब प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरें ।।
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि विधि कहहु मोरि प्रभुताई ।।
तब तबतही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भयमोचनि ।।
मंदोदरि मन महूँ अस ठयऊ। पिअहिं काल बस मति भ्रम भयउ ।।

एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध ।
सहज असंक लंकपति सभा गयउ मद अंध ।।
फूलइ करइ न बेद जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरुख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंचि सम ।।

उत्तर काण्ड

भरत चरन सिरु नाई तुरत गयउ कपि राम पहि ।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि।।

सरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहिं सुनाए ।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुशल रघुराई ।।

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई ॥
समाचार पुर बासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगलमूला ॥
भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलि सिन्धुरगामिनी ॥
जे जैसे तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग में लावहिं ॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयालु रघुराई ॥
अबधपुरी प्रभु आनत जानी। भई सकल सोभा के खानी ॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भई सरजू अति निर्मल नीरा ॥

हरषित गुरु परिजन अनुज भूसुरबृन्द समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत ॥
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥
राकाससि रघुपति पुर सिन्धु देखि हरषान।
बढ़यो कोलाहल करत जन नारि तरंग समान ॥

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह दिखावत नगरु मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान बिदित जगु जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानैं कोउ कोऊ ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बस सरजू पावनि ॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा ॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभुबानी। धन्य अवध जो राम बखानी ॥

आवत देखि लोग सब कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहि जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरष बिरहु अति ताहु ॥

आए भरत संग सब लोगा । कृसतन श्रीरघुवरबियोगा ।।
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ।।
धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ।।
भेटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ।।
संकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा । धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा ।।
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहिं सुर मुनिसंकर अज ।।
परे भूमि नहिं उठत उठाए । बर करि कृपासिन्धु उर लाए ।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ।।

राजीव लोचन स्त्रवत जल तन जलित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहि उपमा कहीं ।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ।।
बुझत कृपानिधि कुशल भरतहि बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई ।।

अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोह कर गहि लियो ।
पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ ।
लछिमनु भरतु मिले तब परम प्रेम दोउ भाई ।।

भरतानुज लछिमन पुनि भेटे । दुसह बिरह संभव दुख मेटे
सीताचरन भरत सिरु नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ।।
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी । जनित बियोग बिपति सब नासी ।।
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथा जोग मिले सबहिं कृपाला ।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नर नारि बिसोकी ।।
छन महि सबहि मिले भगवाना । उमा मरम यह काहु न जाना ।।
एहि विधि सबहिं सुखी करि रामा । आगे चले सील गुन धामा ।।
कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ।।

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं ।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुँकार करि धावत भई ।।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे ।
गइ विषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे ।।

× × ×

राम राज बैठें त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ।।
बयरु न कर कहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ।।
बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग ।
चलहि सदा पावहिं सुखहिनहि भय सोक न रोग ।।
देहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि व्यापा ।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहि स्वधर्म निरत श्रुतिरीती ।।
चारिहुँ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ।।
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ।।
अल्प मृत्यु नाहि कवनिउँ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।।
सब गुनन्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ।।
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ।।
भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ।।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ।।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यहि बरनत हीनता घनेरी ।।
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिर एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी ।।
सोउ जानै कर फल यह लीला । कहहि महामुनिवर दमसीला ।।
रामराज कर सुख संपदा । बरनि न सक फनीस सारदा ।।
सब उदार सब पर उपकारी । बिप्रचरन सेवक नर नारी ।।
एकनारि ब्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ।।

दड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ।।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ।।
कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा । अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा ।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चल मरकन्दा ।।
लता बिटप मागें मधु चुवहीं । मन भावतो धैनु पय स्रवहीं ।।
ससिसंपन्न सदा रह धरनी । नेत्रा भइ कृत जुग कै करनी ।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनिखानी । जगदातमा भूप जग जानी ।।
सरिता निज मरजादा रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ।।
सरसिजसंकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ।।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहिं काज ।
माँगें बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज ।।

+　　　+　　　+

जातरूप मनि रचित अटारीं । नाना रंग रुचिर गजढारीं ।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर । रचे कँगूरा रंग रंग बर ।।
नव ग्रह निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमराबति आई ।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा । जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा ।।
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत ।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह-गृह प्रति मनि दीप बिराजिहिं ।।

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं विद्रुम रची ।
मनि खंभ भीति गिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची ।।
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचित फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।।

चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ।
रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चुराइ ।।

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं ॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसन्त कि नाईं ॥
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिविध सदा बह सुन्दर ॥

× × ×

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ।
दंभिह्न निज मति।कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ॥
भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुन हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ॥

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ बड़े आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोंइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माँहिं ॥
जे अपकारी चार तिह्न कर गौरव मान्य तेइ।
मन बच क्रम बचन लवार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाई। नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥
सूद्र द्विजह्न उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पत्ति त्यागी। भजहिं नारि पर धुरुष अभागी ॥
सौभागिनी बिभूषन हींना। बिधवह्न के सिंगार नवीना ॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनहिं एक नहिं देखा ॥

हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुरु घोर नरक महुँ परई ।।
मातु पिता बालकन्हि बोलवहिं । उदर भरे सोइ धर्म सिखावहिं ।।

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ।।
बादहिं सुद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर आँख देखावहिं डाटि ।।

बहु दाम सँवारहिं धाम जती । विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ।।
कुलवंति निकारहिं नारि सती । गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जब लौं ।।
ससुरारि पिआरि लगी जब तें । रिपुरूप कुटुंब भए तब तें ।।
नृप पाप परायन धर्म नहीं । करि दंड बिडंब प्रजा तिनहीं ।।
धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी ।।
नहिं मान पुरान न वेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ।।
कबि वृंद उदार दुनी न सुनी । गुन दूषण ब्रात न कोपि गुनी ।।
कलि बारहिं बार दुकाल परैं । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं ।।

सुनु खगेस कलि कपट हट दंभ द्वेष पाषंड ।
मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्माण्ड ।।

× × ×

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन ।
जौ सुनि होइ रामपद पीति सदा अबिछीन ।।

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनै न जाइ बखानी ।।
ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।
सो माया बद भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मर्कट की नाईं ।।
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ।।
तब ते जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होई सुखारी ।।
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ।।

जीवहृदय तम लोह बिसेषी । ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ।।
अस संजोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ।।
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौ हरिकृपा हृदय बस आई ।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जें श्रुति कह सुभ धर्म अपारा ।।
तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ।।
नोई निबृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ।।
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै । धृति सम जामन देइ जमावै ।।
मुदिता मथै बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ।।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ।।

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ।।
तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ।।
तीनि अबस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ।।
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिज्ञानमय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सुलभ सब ।।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा ।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भवमूल भेद भ्रम नासा ।।
प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ।।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ।।
छोरत ग्रंथि पाव जौं सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ।।
छोरत ग्रंथि जानि खगराया । बिघ्न अनेक करइ तब माया ।।
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई ।।
कल बल छल करि जाहि समीपा । अंचलबात बुझावहिं दीपा ।।
होइ बुद्धि जौं परम सयानी । तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ।।

जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ।।
इन्द्रीद्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ।।
आवत देखहिं विषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ।।
जब सो प्रभंजन उर गृह जाई । तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई ।।
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ।।
इन्द्रिन्ह सूरन्ह न ग्यान सोहाई । विषयभोग पर प्रीति सदाई ।।
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ।।

तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस ।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहगेस ।।
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ।।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहि बारा ।।
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परम पद लहई ।।
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । सन्त पुरान निगम आगम बद ।।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अनइच्छित आवै बरि आईं ।।
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोऊ करै उपाई ।।
तथा मोच्छसुख सुनु खगराई । रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ।।
अस बिचारि हरि भगति सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृतिमूल अविद्या नासा ।।
भोजन करिअ तृपित हित लागी । जिमि सो असन पचवै जठरागी ।।
असि हरिभगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ।।

सेवक सेब्यभाव बिनु भव न तरिए उरगारि ।
भजहु रामपद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि ।।
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ।।

प्रमुख सहायक सामग्री

१. अध्यात्म रामायण	गीता प्रेस, गोरखपुर
२. कवितावली	गीता प्रेस, गोरखपुर
३. कल्याण के रामायणांक तथा मानसांक	गीता प्रेस, गोरखपुर
४. गीतावली	गीता प्रेस, गोरखपुर
५. गोस्वामी तुलसीदास	डॉ० श्यामसुन्दर दास
६. घट रामायण	तुलसी साहिब हाथरस वाले
७. तुलसी	पं० रामबहोरी शुक्ल
८. तुलसी	डॉ० माताप्रसाद गुप्त
९. तुलसी के चार दल	पं० सद्गुरु शरण अवस्थी
१०. तुलसी ग्रन्थावली भाग १, २, ३	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
११. तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१२. तुलसीदास	डॉ० माताप्रसाद गुप्त
१३. तुलसीदास	पं० चन्द्रबली पांडेय
१४. तुलसीदास और उनका काव्य	पं० रामनरेश त्रिपाठी
१५. तुलसी साहित्य-रत्नाकार	पं० रामचन्द्र द्विवेदी
१६. तुलसी-दर्शन	डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र
१७. तुलसी का समन्वयवाद २ भाग	ब्यौहार राजेन्द्र सिंह
१८. तुलसी और उनका युग	डॉ० राजपति दीक्षित
१९. श्री तुलसीदास का जीवन चरित	श्री शिवनन्दन सहाय
२०. तुलसी शब्द-सागर	श्री भोलानाथ तिवारी
२१. दोहावली	गीता प्रेस से प्रकाशित

२२. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
२३. भक्तमाल — श्री नाभादास कृत प्रियदास की टीका सहित तथा रूपकलाजी द्वारा संपादित
२४. भागवत
२५. मानस-पीयूष
२६. मानस की रामकथा — पं० परशुराम चतुर्वेदी
२७. मानस में रामकथा — डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
२८. मानस कोष — नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
२९. मानस रहस्य — पं० विजयानन्द त्रिपाठी
३०. मानस-मीमाँसा — श्री रजनीकांत शास्त्री
३१. मिश्र-बन्धु विनोद — मिश्र बन्धु
३२. मूल गोसाईं चरित — वेणीमाधव दास
३३. रामचरित मानस — गीता प्रेस, गोरखपुर
३४. रामचरित मानस की भूमिका — श्री रामदास गौड़
३५. रामकथा, उद्भव और विकास — डॉ० कामिल बुल्के
३६. रामायण — वाल्मीकि कृत
३७. रत्नावली दोहावली — श्री मुरलीधर चतुर्वेदी कृत
३८. रत्नावली लघु दोहावली — श्री मुरलीधर चतुर्वेदी कृत
३९. विनय-पत्रिका — गीता प्रेस, गोरखपुर
४०. विनय-पत्रिका — श्री वियोगी हरि की टीका सहित
४१. विनय-पीयूस — श्री वियोगी हरि की टीका सहित
४२. विश्व साहित्य में रामचरित मानस भाग १,२ — श्री राजबहादुर लमगोड़ा
४३. सूकर क्षेत्र महात्म — कृष्णदास कृत
४४. शिवसिंह सरोज — श्री शिवसिंह सेंगर
४५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डॉ० रामकुमार
४६. हिन्दी नवरत्न — मिश्र बन्धु
४७. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचद्र शुक्ल

अंग्रेजी पुस्तक

1. Akbar the Great Moghul, V. A. Smith
2, Encylopaedia of Religion and Ethics
3. Indian Antiquary
4. Jahangir's India. Moreland. Translation
5. Modern Vernacular literature of Hindustan
Dr. Grierson